वाममार्ग

वंशीधर सुकुल

वाम-मार्ग

लेखक और प्रकाशक

वंशीधर सुकुल वैद्यराज, तन्त्रशास्त्री

नई सड़क, कानपुर

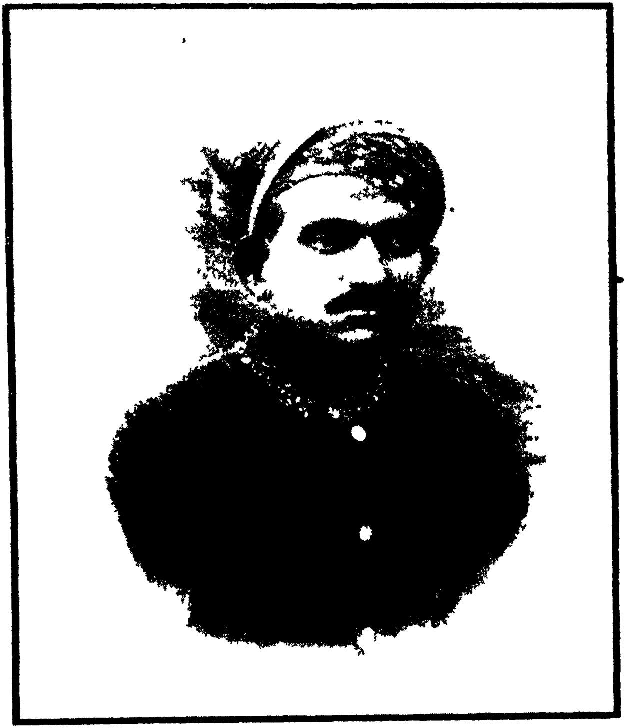
संवत्

१९९०

मूल्य ॥=)

सोल एजेंट --
साहित्य-भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद ।

मुद्रक
शारदाप्रसाद खरे,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग



साहित्यरञ्जन कुँवर हिम्मतसिंह जी

भैंसरोड़गढ़, उदयपुर (मेवाड़)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

समर्पण

श्रीमान् कुँवर हिम्मतसिंह जी

आप जगज्जननी के परम भक्त हैं। 'महिषासुरवध' नामक खण्ड काव्य लिखकर आपने अपनी उस निष्ठा का बहुत ही मरम ढङ्ग से परिचय दिया है। यह पुस्तक आपके ही प्रोत्साहन तथा विशेष सहाय्य से प्रकाशित हो रही है। अतएव यह छोटी सी किन्तु विषय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पुस्तक हार्दिक आदर भाव से आपकी भेंट है। यह वस्तु आपकी ही है। आशा है, प्रसन्नता के साथ आप इसे स्वीकार करेंगे।

आपका शुभैषी

अकिञ्चन लेखक

विषय—सूची

भूमिका

'वाममार्ग' पर हिन्दी में एक भी पुस्तक नहीं है। जो साधक संस्कृत नहीं जानते उनको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यह पुस्तक उसी कठिनाई को दूर करने के विचार से लिखी गई है। परन्तु मेरी अल्पज्ञता के कारण इस पुस्तक में विषय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन नहीं हो सका है। मैंने यह अनधिकार चेष्टा की है। परन्तु यह चेष्टा इस उद्देश से की है कि इसे देखकर अधिकारी लोग अपना कर्तव्य पालन करने को आगे आयेंगे और उनके शुभ प्रयत्न से साधकों का समुचित कल्याण होगा।

यह पुस्तक तीन प्रकरणों में विभक्त है। 'विषय-प्रवेश' नाम के पहले प्रकरण में 'तन्त्रशास्त्र' के गौरव का वर्णन किया गया है और यह बतलाया गया है कि वाममार्ग उस शास्त्र की एक प्रधान साधना है। इसके सिवा शाक्त-धर्म का संक्षेप में परिचय भी दिया गया है। इस प्रकरण के विवेचन को ध्यानपूर्वक पढ़ने से साधक अपने धर्म के महत्त्व को हृदयङ्गम कर सकेगा। यह प्रकरण परमशाक्त पण्डित शिवचन्द्र भट्टाचार्य विद्यार्णव के 'तन्त्र-तत्त्व' नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखा गया है।

'स्वरूप-निरूपण' नाम के दूसरे प्रकरण में भिन्न भिन्न तन्त्रों

की कुछ 'श्रुतियाँ' संकलित की गई हैं। इनका संकलन इस क्रम से किया गया है कि साधक को आगमोक्त 'कुलधर्म' के प्रामाणिक रूप का थोड़े में ज्ञान हो जाय। इस प्रकरण का मनन करके साधक यह जान सकेगा कि उसके मार्ग की क्यों उत्पत्ति हुई, उसकी साधना का क्या ध्येय है, उसे अपनी साधना पर क्यों दृढ़ रहना चाहिए तथा उसके लिए क्या विधेय है और क्या निषिद्ध है। इन श्रुतियों का नित्य पाठ करने से धर्मभाव में वृद्धि होगी और साधना में दृढ़ता आयेगी।

तीसरे प्रकरण 'साधना-क्रम' में साधक के 'नित्यार्चन' का संक्षेप के साथ वर्णन किया गया है। इस प्रकरण का सङ्कलन 'महानिर्वाण तन्त्र' के आधार पर किया गया है। इसके कुछ अंश अन्य तन्त्रों से भी लिये गये हैं। यह दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में 'नित्यार्चन' का वर्णन किया गया है और इस ढंग से किया गया है कि किसी भी 'विद्या' का उपासक अपने देवता का 'नित्यार्चन' इसकी पद्धति के अनुसार कर सकेगा। उसे केवल अपने इष्ट-देवता का मूल-मंत्र और उसके मुख्य मुख्य न्यासों का यथा स्थान समावेश भर करना पड़ेगा। ऐसे स्थलों का निर्देश कर दिया गया है। यही नहीं, जहाँ जहाँ कुल-भेद है, वह भी यथा स्थान उल्लेख कर दिया गया है।

नित्यार्चन की जो विधि पूर्वार्द्ध में लिखी गई है वह पूर्ण है, यद्यपि वह संक्षेप में है और इतनी विशद नहीं है जितनी अन्य तन्त्रों में दृष्टिगोचर होती है। परन्तु साधक लोग यथा-

शक्ति ही नित्यार्चन करते हैं, इसलिए इससे उनको अपनी रुचि तथा क्षमता के अनुसार अर्चन करने में इस पुस्तक से उपयुक्त सहायता मिलेगी।

एक और बात है। जो अर्चन-क्रम पूर्वार्द्ध में दिया गया है, समयाभाव या अन्य कारणवश सभी साधक उसे अथ से इति तक नित्य नहीं करते हैं। कोई केवल 'सन्ध्या-वन्दन', कोई केवल 'इष्ट-मन्त्र का जप', कोई केवल अपने इष्ट-देवता के न्यास और मूल-मंत्र का जप तथा अधिक से अधिक मातृका-न्यास आदि का भी न्यास करते हैं। और पर्वों पर निशाकाल में केवल 'चक्रार्चन' भर करते हैं। यहाँ ये सब बातें यथा स्थान दे दी गई हैं या उनका उल्लेख किया गया है। साधक अपनी क्षमता तथा सुविधा के अनुसार अपना 'नित्यार्चन' एवं 'निशार्चन' इस पुस्तक की सहायता से सरलता के साथ कर सकेंगे।

इसके उत्तरार्द्ध में 'नित्यार्चन' से सम्बन्ध रखने वाले मुख्य मुख्य आवश्यक विषयों का वर्णन किया गया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० और प्रोफेसर ब्रजराज एम० ए० बी० एस-सी०, एल-एल० बी० से जो सहायता मिली है उसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। मुझपर कृपा करनेवाले पण्डित ताराशङ्कर मिश्र वैद्यराज ने 'पात्रवन्दना' का भावार्थ लिख दिया है तथा पण्डित सुन्दरलाल द्विवेदी ने कृपापूर्वक प्रूफ पढ़ दिया है, अतएव मैं इनका भी कृतज्ञ हूँ।

मुझे इस पुस्तक की त्रुटियों के लिए क्षमा माँगने का अधिकार नहीं है, क्योंकि मैंने बिच्छू का मंत्र न जानते हुए साँप के बिल में हाथ डालने का काम किया है, नहीं तो उनके लिए क्षमा माँगना उचित ही था।

इसमें मुझसे मेरी अल्पज्ञतावश निस्सन्देह अनेक त्रुटियाँ हुई हैं। विषय के सिवा छापे की भी अनेक भूलें हो गई हैं। परन्तु छापे की भूलों का शुद्धि-पत्र यथा स्थान लगा दिया है। आशा है, पाठक उसके अनुसार अपनी पुस्तक को शुद्ध कर लेने का कष्ट करेंगे।

लेखक

आद्यायै नमः

वाममार्ग

१—विषय-प्रवेश

जिस वाममार्ग की हम यहाँ चर्चा करेंगे उसका महत्त्वपूर्ण विवरण तन्त्र-शास्त्र में दिया गया है। तन्त्र-शास्त्र हिन्दूधर्म का विश्वकोश है। उसमें हिन्दू-धर्म की सभी साधनाओं की विधियाँ अंकित हैं। यह शास्त्र मुख्यतः आगम और निगम की दो श्रेणियों में विभक्त है। इसके अतिरिक्त बहुसंख्यक तन्त्र-ग्रन्थ डामर, यामल, उड्डीश आदि नामों की श्रेणियों में भी विभक्त हैं, और उपतन्त्रों की भी उसी प्रकार एक बड़ी संख्या है। मतलब यह कि तन्त्रों एवं तद्विषयक ग्रन्थों का अलग ही एक बहुत बड़ा साहित्य-भाण्डार है। परन्तु इसके अधिकांश ग्रन्थ समय के उलटे प्रवाह के कारण लुप्त हो गये हैं। तो भी जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं वे वर्तमान धर्म-ग्लानि के काल में भी तन्त्र-शास्त्र का गौरव अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं।

तन्त्र-ग्रन्थ संवाद-रूप में हैं। जिनमें वक्ता का स्थान शिव ने और श्रोता का पार्वती ने ग्रहण किया है वे आगम कहलाते

हैं और जिनमें वक्ता का स्थान पार्वती ने और श्रोता का शिव ने ग्रहण किया है वे निगम कहलाते हैं। डामरों, यामलों आदि के वक्ता अकेले शिव हैं और उपतंत्र तपोधन ऋषियों की रचनायें हैं।

तन्त्र-धर्मानुयायी आगम-निगम और डामर-यामल की श्रेणी के ग्रन्थों को ईश-वाक्य मानते हैं और वेदों के ही समान उन्हें पूज्य समझते हैं। इन पूज्य ग्रन्थों में युग-विशेष के धर्म का उपदेश किया गया है। महानिर्वाण-तन्त्र में लिखा है—"कलि-दोष के कारण द्विज लोग पवित्रापवित्र का विचार नहीं करेंगे। अतएव वे वैदिक कृत्यों-द्वारा मुक्तिलाभ करने में समर्थ नहीं होंगे। ऐसी स्थिति में स्मृतियाँ और संहितायें मनुष्य-जाति को कल्याण की ओर नहीं ले जा सकेंगी। हे प्रिये, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि कलिकाल में आगम-सम्मत धर्म को छोड़कर दूसरा मार्ग ही नहीं है। × × × × अब वैदिक मन्त्र निर्विष सर्प के सदृश शक्ति-हीन हो गये हैं। × × × जो व्यक्ति कलिकाल में दूसरे धर्म-ग्रन्थों के अनुसार अपना उद्देश सिद्ध करना चाहता है वह मूर्ख है, प्यास से पीड़ित होकर वह गंगा की बालू में कुँआ खोदना चाहता है। इस युग में तंत्रोक्त मंत्र ही शीघ्र फलप्रद हैं।"

परन्तु अज्ञानवश एवं अन्य कारणों से साधारण आस्तिक हिन्दू तन्त्र-शास्त्र के महत्त्व को नहीं स्वीकार करते। यही नहीं, कोई कोई तो उनका विरोध तथा निन्दा तक करते हैं। परन्तु उनका ऐसा करना उचित नहीं है,क्योंकि आस्तिक हिन्दू तो किसी

न किसी देवता का उपासक होता ही है। यदि वह शैव, वैष्णव या शाक्त आदि है तो उसने अपने इष्ट-देव के मंत्र की दीक्षा ली ही होगी, अपने इष्ट-देव की यथाशक्ति षोडशोपचार से पूजा करता ही होगा। ऐसी दशा में वह तन्त्र-शात्र की कैसे उपेक्षा कर सकता है? शास्त्र-चिन्ता में निरत रहनेवाला आस्तिक हिन्दू यह जानता ही है कि वह स्वयं भी तो तन्त्र-शास्त्र के अनुसार ही अपने धर्म की साधना करता है और ऐसे व्यक्ति का तन्त्र-शास्त्र का विरोध करना उसके अज्ञान का ही सूचक होगा।

वस्तुतः तन्त्र-शास्त्र सार्वजनिक और सार्वदेशिक शास्त्र है। उसमें शैवों, वैष्णवों, शाक्तों आदि सभी भिन्न भिन्न सम्प्रदायों की भिन्न भिन्न उपासना-विधियों का वर्णन है। और यह अपौरुषेय शास्त्र सम्पूर्ण आस्तिक हिन्दू-समाज पर आज भी अपना प्रभाव डाले हुए है। वाममार्ग ऐसे ही शास्त्र का एक आचार है। यही नहीं, वह उसका एक महत्त्वपूर्ण अंग है, क्योंकि वह उस शास्त्र में उपासना की सिद्धि का केन्द्र माना गया है। परन्तु आगम-ग्रन्थों के उपलब्ध न होने और उनके सर्वसाधारण की पहुँच के बाहर हो जाने से लोग उनमें प्रतिपादित इस वाममार्ग के कारण उनके सम्बन्ध में कुछ का कुछ समझ बैठे हैं। आस्तिक हिन्दुओं को इस बात की खबर ही नहीं है कि वे जिस धर्म के अनुयायी हैं उसकी रचना आगम-शास्त्र के पुनीत सिद्धान्तों के आधार पर ही हुई है। इसी अज्ञान के कारण यह पवित्र

शास्त्र इस पुण्य भूमि से धीरे धीरे तिरोहित होता गया। भूतकाल में अहिंसावादी जैनों और बौद्धों के प्रबल पड़ जाने पर वेदों के साथ साथ इसके भी विनाश का उपक्रम दिन दिन बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि हिन्दुओं की एक विशाल संख्या ने उक्त दोनों वेद-विरोधी धर्मों के प्रभाव में पड़कर अहिंसा-धर्म को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार स्वयं हिन्दू ही वेद के साथ साथ अपने इस युग-विशेष के वेद के भी विनाश के कारण हुए।

तान्त्रिक धर्म वैदिक कर्म-काण्ड का एक विकसित तथा समयोपयोगी रूप है। पञ्चतत्त्वों-द्वारा जो उपासना-क्रम इसमें विहित माना गया है* और जिसकी 'वाम-मार्ग' के नाम से विगर्हणा की जाती है वह वैदिक कर्म-काण्ड के अनुकूल है। परन्तु विरोधियों ने उसकी एक इसी बात को आगे करके लोगों के मन में भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसी से लोग तन्त्र का नाम सुनते ही चौंक पड़ते हैं, यद्यपि वे, यदि ध्यान दें तो, अपनी चार धार्मिक क्रियाओं में तीन तान्त्रिक ही पायेंगे। क्योंकि बौद्ध-धर्म के पराभव के बाद विराट् सनातन-धर्म का जो विकास हुआ है वह किसी भी अंश में वैदिक नहीं है। उसपर तन्त्र-शास्त्र की पूरी छाप लगी हुई है।

---

*वैदिक कर्मकाण्ड में मद्य के स्थान में सोम का उपयोग होता था, मासाष्टक-श्राद्ध में मांस का, अष्टक तथा प्रेत श्राद्ध में मत्स्य का और वामदेव्य व्रत एवं महाव्रत में मैथुन का ग्रहण होता था।

महाभारत-युद्ध के बाद से बौद्धधर्म के प्रारम्भ होने के पहले तक, अर्थात् कोई दो हजार वर्ष तक भारतवर्ष में तन्त्र-धर्म का ही प्राबल्य रहा। तन्त्र-ग्रन्थों के वचनों से प्रकट होता है कि किसी समय भारत तीन क्रान्तों में विभक्त था। ये तीनों विष्णुक्रान्त, रथक्रान्त और अश्वक्रान्त के नाम से प्रसिद्ध थे। मोटे हिसाब से पूर्वोत्तरी भाग विष्णुक्रान्त, पश्चिमोत्तरी रथ-क्रान्त और अवशिष्ट तथा दक्षिणी भाग अश्वक्रान्त था। इन क्रान्तों की सीमा में आज के ईरान, अफगानिस्तान, तिब्बत, ब्रह्मदेश, जावा आदि देश आ जाते हैं। मतलब यह कि समस्त पूर्वी और दक्षिणी एशिया में तान्त्रिक साधना का बहुत अधिक प्रचार था। इस भौगोलिक देश-विभाजन का केन्द्र विन्ध्याचल का पूर्वी सिरा या करतोया नदी माना गया था। तन्त्र ऐसा ही महत्त्वपूर्ण शास्त्र है।

परन्तु तन्त्र-शास्त्र का महत्त्व केवल उसके अध्ययन से ही नहीं जाना जा सकता। उसका वास्तविक ज्ञान तो उसमें बताई गई साधना को करके ही प्राप्त किया जा सकता है। तन्त्र-ग्रन्थ सामान्य ग्रन्थ नहीं हैं और न वे किसी सम्प्रदाय-विशेष के ही ग्रन्थ हैं। ब्रह्मोपासना से लेकर क्षुद्रदेवोपासना तक की साधना-विधि उनमें बताई गई है। हठ-योग से लेकर नाम-स्तवनतक की उनमें व्यवस्था दी गई है। उनमें आदि-शक्ति, सृष्टि, प्रलय, देवताओं की उत्पत्ति, उनकी पूजा-विधि, भूतों

का वर्गीकरण, खगोल, लोकों, नरकों और स्त्रियों का वर्णन, युगधर्म, आश्रमधर्म, संस्कार, देवमूर्ति-प्रतिष्ठा, मन्त्र-यन्त्र, मुद्रा-क्रिया, साधना-क्रम, अन्तर् और बहिर् उपासना-विधि, गृह, वापी और कूप की प्रतिष्ठा, वृक्षारोपण, तीर्थकथन, पुरश्चरण-विधि, जप-विधि, व्रत, षट्कर्म, उत्सव, ध्यानयोग, राजधर्म, धर्मशास्त्र, औषधि-क्रिया, साधारण विज्ञान आदि नाना प्रकार के विषयों का समावेश है। अतएव तन्त्रशास्त्र सार्वदेशिक शास्त्र है। उसका उपदेश मानुष्यमात्र के कल्याण के लिए किया गया है।

ऐसे ही महत्त्वपूर्ण शास्त्र-द्वारा प्रतिपादित वाममार्ग का कोई डेढ़ हजार वर्ष से इस पुण्य भूमि में निषेध हो रहा है। और इस निन्दा के कारण हमारे वे धर्माचार्य हैं जिन्होंने समय समय पर इस धर्म-प्राण देश में अपने नये नये पन्थ चलाये हैं। तान्त्रिक धर्म का प्राधान्य नष्ट कर अपने पन्थ का महत्त्व सिद्ध करने के लिए उन लोगों ने वाममार्ग को ही आगे लाकर उसकी निन्दा की। फल यह हुआ कि वाममार्ग एक प्रकार का पाप-काण्ड समझा जाने लगा; अतएव उसका प्रतिपादन करनेवाले अपौरुषेय तन्त्र-ग्रन्थ भी लोगों की निगाह में गिर गये।

परन्तु इस सम्बन्ध में कौआ कान ले गया वाली कहावत ही चरितार्थ होती दिखाई देती है। उद्देश-विशेष से कुछ लोगों-द्वारा की गई यह निन्दा यथार्थ समझ ली गई और

किसी ने यह देखने का कभी प्रयत्न नहीं किया कि निन्दकों के कथन में कितना सत्यांश है। इस भेड़ियाधसान में तन्त्र-धर्म के प्रति लोगों में श्रद्धा ही नहीं रह गई। वही लोग जो अधिक दृढ़ थे और जिनको तान्त्रिक धर्म का ज्ञान था, परम्परा से इस ईश्वरीय धर्म को ग्रहण किये रहे और आज भी अपने श्रद्धा-भाव से इस पुण्य भूमि में उसका अस्तित्व बराबर बनाये हुए हैं।

तन्त्र-धर्म आज का धर्म नहीं है। यह भारत का सनातन-धर्म है। श्रीमद्भागवत (३ स्कन्ध ४ अध्याय) में शिव और दक्ष के वैर की जो कथा लिखी है उससे उस प्राचीनतम काल में भी इस धर्म के अस्तित्व का पता लगता है। शिव को शाप देते हुए भृगु ने जिस शिव-दीक्षा का उल्लेख किया है वह तान्त्रिक वाममार्ग पर घटित है। इसके सिवा वैदिक ग्रन्थों में भी इसका यथास्थान बराबर उल्लेख हुआ है।

वेद अनेक शाखाओं में विभक्त हैं। अतएव उनके उतने ही उपनिषद् भी हैं। अथर्ववेद के भी अनेक उपनिषद् हैं। उसके उपनिषदों की नामावली से ही यह बात प्रकट हो जाती है कि उनमें अर्चना की विधि का वर्णन है। नृसिंहतापनीय उपनिषद् की बहुत टीकायें हैं। उनमें एक शंकराचार्य की भी है और एक उनके गुरु गौडपादाचार्य की भी है। इस उपनिषद् में तथा ऐसे अन्य उपनिषदों में जो अर्चना विधियाँ लिखी गई हैं वे अधिकतर तान्त्रिक सिद्धान्त-मूलक ही हैं। इससे

यही प्रकट होता है कि तान्त्रिक अर्चना-विधि वैदिक अर्चना-विधि जैसी प्राचीन ही नहीं है, किन्तु उसका विकसित रूप भी है।

स्मृतियों में मनु-स्मृति को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है। कल्लूक भट्ट ने मनु-संहिता पर जो टीका लिखी है वह भी प्रामाणिक मानी जाती है। उसके दूसरे अध्याय के पहले श्लोक की टीका में कुल्लूक ने हारीत के ग्रन्थ का एक वाक्य उद्धृत किया है, जिसमें वेदों के साथ तंत्र श्रुति-रूप में ग्रहण किये गये हैं।

वृद्धहारीत-संहिता में तो तान्त्रिक दीक्षा की विधि तक वर्णित है। उष्नः-संहिता में पञ्चरात्र और पाशुपत धर्म का स्पष्ट उल्लेख है। कात्यायन-संहिता में गणेश, गौरी तथा अन्य देव-देवियों की उपासना का पूरा वर्णन है। व्यास-संहिता में लिखा है कि गुह्य-विद्या का जप करना चाहिए एवं स्फटिक आदि की मालाओं का उपयोग तथा गायत्री के सहित रुद्र की उपासना करनी चाहिए। सांख्य-संहिता में लिखा है कि देवता के ध्यान के बाद स्फटिक आदि की मालाओं से जप करना चाहिए। कितने माला जप हो गई, इसकी संख्या बायें हाथ की अँगुलियों के पोरों से जाने रहना चाहिए। वृद्धगौतम-संहिता में धर्मशास्त्र के ग्रन्थकारों की सूची दी गई है। इस सूची में ब्रह्मा, उमा, और महेश्वर के नाम हैं।

इस प्रकार धर्मशास्त्र में जिस प्रामाणिक रूप से तन्त्र-शास्त्र का महत्त्व स्वीकार किया गया है उससे यही जान पड़ता है कि

धर्मशास्त्र तन्त्र-शास्त्र के पक्ष में है और उसको आप्त-शास्त्र के रूप में स्वीकार करता है।

पुराण-ग्रन्थों में तो तन्त्र-शास्त्र का प्रतिपादन और भी स्पष्ट रूप से किया गया है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में कहा गया है कि केशव की पूजा तान्त्रिक विधि से करनी चाहिए। इसी स्कन्ध में लिखा है—"लोग तन्त्रों-द्वारा कलियुग में मेरी पूजा कैसे करें सो सुनो। उनको मेरी डोल-यात्रा, रथ-यात्रा आदि यात्रायें देखनी चाहिए, यज्ञ करना चाहिए, वैदिक और तान्त्रिक विधि से दीक्षा लेनी चाहिए और जिन व्रतों में मेरी पूजा होती है वे व्रत करने चाहिए।"

ब्रह्म-पुराण में कहा गया है कि "आम के बाग में भुवनेश्वर के मन्दिर में जाकर मनुष्य को वैदिक और तान्त्रिक विधि से महादेव की पूजा करनी चाहिए।" उक्त पुराण का यह कथन रघुनन्दन भट्ट ने अपने पुरुषोत्तमतत्त्व नाम के ग्रन्थ में उद्धृत किया है। कूर्मपुराण में लिखा है कि "श्रुति और स्मृति के विरुद्ध संसार में बहुत से शास्त्र हैं। ऐसे शास्त्रों के नियम तामसिक हैं। कराल भैरव, यामल और ऐसी अन्य पुस्तकें वाममार्ग का अनुकरण करती हैं" इत्यादि। यह वाक्य कूर्म-पुराण में है। रघुनन्दन तथा दूसरे लोगों ने इसको भी अपने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किया है। वराह-पुराण में लिखा है कि विद्वान लोगों को जनार्दन की पूजा वेद या तन्त्र की विधि से करनी चाहिए। पद्मपुराण के

उत्तरखण्ड में लिखा है कि वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षा लिये बिना मनुष्य का भगवद्भक्त होना सम्भव नहीं है।

वराहपुराण में रुद्र के महत्त्व के वर्णन में कहा गया है—"शङ्कर के उतने ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं जितनी महाशक्तियाँ हैं। जो महाशक्ति की उपासना करता है वह उसके पति शङ्कर की भी उपासना करता है। जो देवी की उपासना करता है, यदि वह रुद्र को भी प्रसन्न कर ले तो ये देवियाँ भी उस साधक को सदा के लिए सिद्ध हो जायँगी।"

शङ्कर-संहिता स्कन्द-पुराण का एक भाग मानी जाती है। इसमें एक स्थान पर शङ्कर ने कहा है—"वेद, आगम, और पुराणों का तत्त्व मन को मोहित करता है, इसलिए उसे गुप्त रखना चाहिए।" यहाँ शैवागम और आगम से तन्त्र-शास्त्र का ही अर्थ है।

इन कुछ उल्लेखों से प्रकट होता है कि तन्त्रों का पुराणों में समर्थन किया गया है और उसकी उपासना-विधि का महत्त्व भी स्वीकार किया गया है।

रामायण और महाभारत में भी तान्त्रिक उपासना का पूरा समर्थन किया गया है।

रामायण में बला और अतिबला नाम की विद्याओं का उल्लेख हुआ है। ये तान्त्रिक विद्यायें हैं और इनके प्राप्त करने की विधि तन्त्रसार नाम के संग्रह-ग्रन्थ में दी गई है।

महाभारत के शान्ति-पर्व के २५९ वें अध्याय में मोक्षधर्म के विषय में ७, ८, ९ वें श्लोक में युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा है—"मैंने सुना है कि जैसे जैसे युग बीतने गये, वैसे ही वैसे वैदिक धर्म भी धीरे धीरे शिथिल होता गया। सत्ययुग के लिए धर्म का एक प्रकार है, त्रेता के लिए दूसरा, द्वापर के लिए तीसरा और कलियुग के लिए चौथा है। मनुष्य की युगानुसार शक्ति के अनुसार धर्म के भिन्न भिन्न प्रकार वेदों में माने गये हैं। वेदों के वचन सत्य हैं और इन्हीं वचनों से सर्वतोमुखी वेद उत्पन्न हुए हैं।" और वे सर्वतोमुखी वेद ये तन्त्र ही हैं। वेदों की तरह स्मृतियाँ भी सब वर्णों को समान अधिकार नहीं देती हैं। स्मृतियों का भी अध्ययन शूद्रों के लिए वर्जित है। इसलिए सर्वतोमुखी वेद तन्त्र ही हैं, क्योंकि तन्त्रों में सब वर्णों को समानता का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार शास्त्रानुसार जिस प्रकार वेदों का कोई प्रणेता नहीं, किन्तु वे चतुर्मुख ब्रह्मा के द्वारा कहे गये हैं, उसी प्रकार शास्त्रानुसार तन्त्रों का भी कोई रचयिता नहीं है, किन्तु वे शिव के मुख से ही प्रादुर्भूत हुए हैं।

महाभारत के शान्तिपर्व (अध्याय २८४ श्लोक १२१,१२२, १२३,१२४) में उक्त बात का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। वहाँ महादेव ने दक्ष से कहा है—"षडङ्गों के सहित सम्पूर्ण वेदों और सांख्य-योग से मैंने यह पाशुपत वृत निकाला है। इसमें ऐसे कड़े नियम हैं तथा विस्तृत तप है कि उन्हें देव-दानव कोई नहीं कर सकता। यह व्रत

वेदों और शास्त्रों के समस्त विधानों से श्रेष्ठ है। यह सब वर्णों और आश्रमों के लिए अच्छा और हितकर है। यह गुप्त वृत नित्य है। तीन वर्ष और दस दिन का यह वृत है। सज्जन इसकी प्रशंसा करते हैं और दुष्ट इसकी निन्दा करते हैं। कुछ बातों में यह वर्णाश्रम-धर्म के विपरीत है, तोभी बहुत सी बातों में उससे मिलता-जुलता भी है। इसे विद्वानों ने विहित माना है। यह फलदायक है। इसे वे लोग करते हैं जो आश्रमों से परे हो गये हैं।" यह स्पष्ट रूप से तान्त्रिक वृत है, जो स्वयं उद्धरण से स्पष्ट है।

यह जानकर लोगों को आश्चर्य होगा कि महाभारत में तान्त्रिक शब्दावली तक मौजूद है। महाभारत के शान्तिपर्व के २८४ वें अध्याय का ७४ वाँ श्लोक इस प्रकार है--घण्टी चरु चेली मिली मिली ब्रह्म कायिकामाग्नीनाम। टीकाकार नीलकण्ठ ने इसका अर्थ मन्त्र-रूप में इस प्रकार किया है—ॐ रुद्र चेली चेलो चेली चेली मिली मिली ॐ स्वाहा। अनुशासन-पर्व के १४ वें अध्याय के ३७९ वें श्लोक में कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं कि आठ दिन एक क्षण की तरह निकल गये और मैंने उपमन्यु ब्राह्मण से मन्त्र लिया। इसके बाद कहा गया है कि कृष्ण ने इसी मन्त्र को जपकर शिव की साधना की। फलस्वरूप शिव प्रसन्न होकर उमा-सहित कृष्ण के सामने प्रकट हुए और उनको वर दिया।

इसी प्रकार अनुशासन-पर्व में जहाँ मोक्षधर्म की चर्चा है, कहा गया है—"चतुर्मुख महालिङ्ग और चारुलिङ्ग आदि बीजों पर शासन करनेवाले और बीजों के बनानेवाले..." यही क्यों, शान्ति-पर्व में तो इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख है कि सत्ययुग में एक बार रुद्र योग में व्यग्र हुए। उस समय उन्होंने बालखिल्य ऋषियों को तन्त्र-शास्त्र का उपदेश किया। परन्तु बाद को उनकी माया से वह फिर लुप्त हो गया। इसी प्रकार शान्ति-पर्व के २६७ वें अध्याय के १७ वें श्लोक में महर्षि कपिल ने ऋषि स्यूम से पूछा है कि आगम के सिवा और कौन कौन शास्त्र तुमने देखा है। अपने उत्तर में ऋषि स्यूम ने बहुतेरे विषयों का उल्लेख किया और सब को श्रुति बतलाया।

इस संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे प्राचीन प्रामाणिक धर्मग्रन्थों में तन्त्रों का महत्त्व भले प्रकार स्वीकार किया गया है। और वेद से लेकर पुराणों तक में उनका प्रशंसात्मक उल्लेख होने से उनके वास्तविक गौरव का पूरा परिचय प्राप्त होता है।

जिन लोगों को तन्त्र-शास्त्र का महत्त्व स्वीकार नहीं है उनका यह भी कहना है कि तन्त्रों की रचना बौद्ध-धर्म के बाद हुई है और यह प्राचीन शास्त्र नहीं है। परन्तु उनका यह कथन प्रमाण-रहित है। बौद्ध-साहित्य के प्रमाणों से ही यह सिद्ध होता है कि स्वयम् बौद्धों ने ही हिन्दू-तन्त्रों को

स्वीकार किया है। बौद्ध लोग भी तारा और हयग्रीव की पूजा तान्त्रिक रीति से ध्यान और वीज-मन्त्रों के द्वारा ही करते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि हिन्दू-तन्त्रों की रचना का स्रोत बौद्धों की यही पूजा है। यदि थोड़ी देर के लिए इनकी यह बात मान ली जाय तो क्या इनसे यह पूछा जा सकता है कि यदि हिन्दुओं का मस्तिष्क बौद्ध-धर्म की प्रभावशाली शिक्षा से आकृष्ट हुआ था तो उन्होंने उस धर्म के बाह्य स्वरूप से ही अपना सम्बन्ध क्यों स्थापित किया, उसके मौलिक सिद्धान्तों को क्यों नहीं ग्रहण किया। बौद्धों की तरह हिन्दुओं ने भी एक-मात्र निर्वाण-प्राप्ति की कामना को क्यों नहीं ग्रहण किया? बौद्धों के नमूने पर बनाई हुई अपने इष्ट-देवताओं की मूर्तियों के सामने हाथ जोड़कर सौन्दर्य-वृद्धि, जय और यश की प्राप्ति, शत्रुओं का विनाश आदि जैसी कामना-मूलक प्रार्थनायें करना क्यों नहीं त्याग किया? कामनाओं को नष्ट करने के लिए जो योग-क्रिया की जाती है उसमें और वैदिक धर्म की धनार्जन, शत्रु-नाश आदि कामनामूलक प्रार्थनाओं में बड़ा भारी भेद है। कहने का मतलब यह है कि तन्त्रशास्त्र का बौद्ध-धर्म से सिद्धान्त का भेद है और वह बौद्ध-धर्म से पहले का शास्त्र है।

बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रन्थ ललितविस्तर में लिखा है कि बुद्धदेव का जन्म होने पर उन्हें सप्तमात्रिकाओं, गौरी, गणेश, इन्द्र आदि की मूर्तियाँ दिखाई गई थीं तथा उनको निगम, पुराण

इतिहास और वेदों का विशेष ज्ञान था। यहाँ निगम से तन्त्र-शास्त्र का ही मतलब है! बुद्ध ने एक स्थल पर भिक्षुओं से कहा है कि 'मूर्ख लोग ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, देवी, कार्तिकेय, कात्यायनी माता, गणपति आदि की शरण में जाते हैं और उनको नमस्कार करते हैं। कुछ लोग श्मशान तथा चौराहे पर तपस्या करते हैं। यही नहीं, ऐसे साधकों को पाखण्डी कहते हुए बुद्धदेव यह भी कहते हैं कि ये लोग अपनी पूजा में मद्य-मांस का भी प्रयोग करते हैं। यदि उस समय तन्त्रों का प्रचार न होता तो उन्हें यह सब कुछ कहने का अवसर कहाँ से मिलता? उनका यह उपर्युक्त कथन सर्वथा तन्त्रों पर ही घटित होता है, जिससे प्रकट होता है कि बुद्धदेव के पहले से भारत में तन्त्र-शास्त्र का प्रचार था। वह बौद्ध-तंत्रों की नकल नहीं है।

बुद्ध-धर्म से जैनधर्म पहले का है। इस धर्म के ग्रन्थों में भी तन्त्र-शास्त्र की रहस्य-पूजा का उल्लेख हुआ है। दर्शनसार नामक जैनग्रन्थ का हम यहाँ एक अवतरण देते हैं। इस अवतरण से तन्त्र-शास्त्र और उसकी रहस्य-पूजा की प्राचीनता अपने आप स्पष्ट हो जाती है। उक्त अवतरण इस प्रकार है—

सिरिपासणाह तित्थो सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्तिमुणी॥६॥
तिमिपूरणासणेहिं अहिगय पवज्जाओ परिब्भहो।
रत्तंबरं धरित्ता पवहियं तेण एवं तं॥७॥

मंसस्स णत्थि जीवो जहाफले दहियदुद्ध-सक्करए ।
तम्हा तं वं छित्ता तं भक्खंतो ण पा विट्टो ॥८॥
मज्ज ण वज्जणिज्ज दवदव्वं जह जल तहा एदं ।
इदि लोए घोसिता पवहियं सव्व सावज्ज ॥९॥
अएणो करे दि कएयं अएणो तं भुंज दीदि सिद्धं तं ।
परिक प्पिऊण णूणं वसिकिच्चा णिरय भुववएणो ॥१०॥
दर्शनसार (जैन-शास्त्र)

अर्थात् भगवान श्रीपार्श्वनाथ के तीर्थ में सरयू नदी के तटवर्ती पलाश नामक नगर में पिहिताश्रय साधु का शिष्य बुद्धकीर्ति मुनि हुआ, जो महाश्रुत या बड़ा भारी शास्त्रज्ञ था। परन्तु मछलियों का आहार करने से वह ग्रहण की हुई दीक्षा से भ्रष्ट हो गया और रक्ताम्बर धारण करके उसने एकान्त-मत की प्रकृति की। फल, दही, दूध, शक्कर आदि के समान मांस में भी जीव नहीं है, अतएव उसकी इच्छा करने और भक्षण करने में कोई पाप नहीं है। जिस प्रकार जल एक द्रव द्रव्य अर्थात् तरल या बहनेवाला पदार्थ है, उसी प्रकार शराब है, अतःवह त्याज्य नहीं है। इस प्रकार की घोषणा करके उसने संसार में सम्पूर्ण पाप-कर्मों की परिपाटी चलाई। एक पाप करता है और दूसरा फल भोगता है, इस तरह के सिद्धान्त की कल्पना करके और उससे लोगों को वश में करके या अपने अनुयायी बनाकर वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। यह तो हुआ तन्त्रशास्त्र के

महत्त्व और उसकी प्राचीनता का दिग्दर्शन। अब हम यहाँ उसकी धर्मभावना की थोड़े में चर्चा करते हैं।

तन्त्रों मे निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन है। उसमें ब्रह्म 'निष्कल' (प्रकृति-रहित) ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म का यह स्वरूप तुरीयावस्था के भी परे है। इसका अनुभव केवल योग-द्वारा आत्म-ज्ञान होने पर होता है। ब्रह्म 'निष्कल' भी है और 'सकल' भी। निष्कल ब्रह्म ही 'परब्रह्म' है। पर जब वही सकल (प्रकृति से युक्त) है तब उसकी संज्ञा सकल ब्रह्म होती है। प्रकृति के त्रिगुणात्मक होने से सकल ब्रह्म 'सगुण' है। इस सगुण ब्रह्म में 'शक्ति' का अधिष्ठान है और यह सगुण ब्रह्म शक्ति का आधार है। ब्रह्म के ये तंत्रवर्णित स्वरूप वस्तुतः एक ही पदार्थ हैं। तान्त्रिक साधक इसी सकल ब्रह्म के शक्ति-स्वरूप को अनादिरूपी, ब्रह्मरूपी और चैतन्यरूपी जानकर आत्मज्ञान की उपलब्धि करते हैं, क्योंकि यही सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

प्रारम्भ में केवल निष्कल ब्रह्म का ही अस्तित्व था। वही एक था। परन्तु जब उसमें शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, इच्छा-शक्ति उत्पन्न हुई और उसने 'अहं बहु स्याम' का उद्घोष किया तब वह 'अपर' हुआ। ब्रह्म का यही रूप तान्त्रिक आराधना का केन्द्र है। उसका यही रूप नाना देवताओं के रूपों में अस्तित्व में आया है। तंत्र में वह सशक्ति ब्रह्म 'शिव-शक्ति'*

* रहस्य-पूजा में प्रथम तत्त्व के शोधन के उपरान्त सर्वप्रथम उसमें

कहा गया है। इसी से नाद का उद्भव हुआ है और उस नाद से विन्दु का। 'शारदा' में लिखा है—सच्चिदानन्द-विभवात् सकलात् परमेश्वरात। आसीच्छक्तिः ततो नादो नादाद् विन्दुसमुद्भवः ॥ अर्थात सकल और सच्चिदानन्द ब्रह्म से शक्ति उद्भूत हुई, शक्ति से नाद और नाद से विन्दु। इसी विन्दु में उच्च कोटि का साधक शिवशक्ति का ध्यान करता है। वह इस शक्तिमय ब्रह्म अर्थात शिवशक्ति को माया के बन्धन और आवरण से बँधे तथा ढँके परम विन्दु के रूप में स्थित ध्यान करता है। विन्दु की चने से उपमा दी गई है। चने के भीतर दो दाने होते हैं। यह परम विन्दु प्रकृति-पुरुष अर्थात् शिवशक्ति इन्हीं दोनों के रूप का है। शब्द-ब्रह्म 'अपर ब्रह्म' है। शब्द-ब्रह्म शक्तियों की—सत, रज और तम गुणों के सहित ज्ञान, इच्छा और क्रिया की शक्तियों की—त्रिमूर्ति में अपने आपको प्रकट करता है।

परम विन्दु से निकली रौद्री अर्थात् रुद्र और उनकी शक्ति। इनका रूप 'अग्नि' है और इनका कार्य 'ज्ञान' है। फिर निकली वामा अर्थात विष्णु और उनकी शक्ति। इनका रूप 'सूर्य' है और इनका कार्य 'क्रिया' है। तब ज्येष्ठा अर्थात ब्रह्मा और उनकी शक्ति निकली। इनका रूप 'चन्द्रमा' है और कार्य

इन शिव-शक्ति की आनन्द-भैरव! और आनन्द-भैरवी के रूप में पूजा होती है।

'इच्छा' है। इसी से देवी को इच्छा-शक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञान-शक्ति कहते हैं।

शक्ति माया और मूल-प्रकृति दोनों है। माया से ब्रह्म अपने को भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट करता है। मूल-प्रकृति उसकी वह स्थिति है जो व्यक्त होने पर नाम-रूप का विश्व होती है।

देवी महाशक्ति है। वह माया है, क्योंकि उसी की माया से इस संसार का उद्भव होता है। माया की अधीश्वरी होने से वह महामाया है। वह अविद्या है, क्योंकि वह बन्धन में डालती है। वह विद्या है, क्योंकि वह मुक्त करती है और संसार का संहार करती है। वह प्रकृति है और सृष्टि के पहले होने से आद्या शक्ति है।

देवी 'परब्रह्म-रूप' में रूप और गुण से परे है। देवी के तीन रूप हैं। पहला पर-रूप है, जिसको कोई नहीं जानता। दूसरा मन्त्र-रूप है, जो उसका सूक्ष्म रूप है। तीसरा स्थूल रूप है—यह हाथ-पैर आदि वाला रूप है। उसके इसी रूप का वर्णन तान्त्रिक और पौराणिक स्तोत्रों में किया गया है।

प्रकृति के रूप में देवी ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर का कारण है। अतएव उसके नर और नारी दोनों रूप हैं। परन्तु उसका ध्यान स्त्री-रूप में ही होता है, क्योंकि वह जगज्जननी है।

महादेवी के रूप में वह सरस्वती, लक्ष्मी, गायत्री, दुर्गा,

त्रिपुरसुन्दरी, अन्नपूर्णा और उन सब देवियों के रूप में जो ब्रह्म के अवतार हैं, विद्यमान है।

सती, उमा और गौरी के रूप में देवी शिव की अर्द्धाङ्गिनी है। दक्ष के यज्ञ के पहले सती के रूप में उसने शिव के सामने अपने आपको अपने दस प्रसिद्ध रूपों में प्रकट किया। उसके ये रूप दस महाविद्याओं के नाम से प्रख्यात हैं। काली, बगला, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, मातंगी, षोडशी, धूमावती, त्रिपुरसुन्दरी, तारा और भैरवी—यही दस महाविद्यायें हैं।

जगज्जननी के इन रूपों की अर्चना तन्त्रों में वाममार्ग के अनुसार निर्दिष्ट की गई है। उनमें वाममार्ग के साधकों के तीन भाव या स्वभाव बताये गये हैं। ये पशु, वीर और दिव्य भाव हैं। पशुभाव में रजोगुण तमोगुण पर प्रभाव डालता है, जिससे भ्रान्ति, तन्द्रा और आलस्य का उद्भव होता है। पशु-शब्द पाश से बना है। वह साधक पशु है जो घृणा, लज्जा, भय,शोक, जुगुप्सा, कुल, शील और जाति—इन आठ पाशों से बँधा है। कुब्जिकातंत्र में लिखा है–"पशुभाववाले साधक पशु ही होते हैं। पशुसाधक यंत्र नहीं छूता, न मंत्र का जप करता है। वह यज्ञों और तंत्रों को सन्देह की दृष्टि से देखता है, मन्त्रों को अक्षरमात्र समझता है, गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं करता, मूर्ति को पत्थर का खण्ड समझता है, देवताओं में भेदबुद्धि रखता है और बिना

मद्य-मांस के पूजा करता है। अज्ञानवश सदा नहाने-धोने तथा दूसरों की निन्दा करने में लगा रहता है।"

दिव्यभाव का लक्षण कुब्जिकातंत्र के सातवें अध्याय में यह दिया है—"जो नित्य स्नान-सन्ध्या करता है, स्वच्छ वस्त्र धारण करता है, भस्म या रक्तचन्दन का त्रिपुण्ड लगाता है, रुद्राक्ष की माला पहनता है, जप और अर्चना करता है, नित्य दान करता है; वेद, शास्त्र, देवता और गुरु का विश्वास करता है और सभी देवताओं को कल्याणरूप मानता है, वह दिव्यभाववाला साधक है। यह साधक स्त्रियों के पैरों का अभिवादन करता है, उन्हें सदा गुरुवत् मानता है, देवी की निशा में पूजा करता है, पान खाकर अर्थात् भोजन कर जप करता है, कुल-वृक्ष (मंत्र-तंत्र की ज्ञाता कुल-स्त्री) का अभिवादन करता है, आद्या को सब कुछ अर्पण कर देता है, इस विश्व को 'शक्ति' से व्याप्त देवता-स्वरूप समझता है, शिव सबमें है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में 'शिवशक्ति' व्याप्त है— सदा इसी भाव में रहता है, देवता-भाव प्राप्त करने तथा उसे बनाये रखने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है।"

इस भाव-भेद के सम्बन्ध में वामकेश्वर-तंत्र में इस प्रकार लिखा है—"जन्म से १६ वर्ष के वय तक पशुभाव रहता है। उसके आगे ५० वर्ष के वय तक वीरभाव और तब दिव्यभाव रहता है। अन्त में ये तीनों भाव मिल जाते हैं और तब साधक के मन की दशा कुलाचार के अनुरूप हो जाती है। उस दशा में

वह देवता-सदृश हो जाता है।" इसी से साधक के लिए भावैक्य का अभ्यास श्रेय है।

साधक के लिए दीक्षा और अभिषेक आदि संस्कार अनिवार्य हैं। पहले गुरु से दीक्षा लेनी पड़ती है। इसके बाद अभिषेक होता है। अभिषेक ८ प्रकार के हैं। पहला शाक्ताभिषेक साधना का मार्ग ग्रहण करने के समय होता है। इसके बाद पूर्णाभिषेक होता है। इस अभिषेक से साधक दक्षिणाचार के बाद के आचार का अधिकार प्राप्त करता है। अपने मूल-मंत्र का पुरश्चरण करने के बाद ही वह इस अभिषेक का अधिकारी होता है। तीसरा क्रमदीक्षाभिषेक है। यह अभिषेक होने पर साधक यज्ञोपवीत को माला की तरह धारण करता है। इसके बाद अनेक परीक्षाओं के अनन्तर साम्राज्याभिषेक और महासाम्राज्याभिषेक होता है। अन्त में कठिनतर योगदीक्षाभिषेक होता है। इन संस्कारों तक साधक पञ्चाङ्ग पुरश्चरण कर चुकता है। योगदीक्षाभिषेक के बाद पञ्चाङ्गयोग करने पर उसका पूर्णदीक्षाभिषेक होता है। इसके बाद वह महापूर्णदीक्षाभिषेक का अधिकारी होता है। इस स्थिति में वह शिखा-सूत्र त्यागकर परमहंस की गति को प्राप्त करता है।

तन्त्रों में साधकों के सात भेद बताये गये हैं। एक मत के अनुसार वे ९ प्रकार के होते हैं। 'कुलार्णव' में उनके नाम श्रेणी के अनुसार वेदाचार (तांत्रिक वेदाचार), वैष्णवाचार, शैवाचार,

दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार (अघोराचार, योगाचार), कौलाचार आदि गिनाये गये हैं। इनमें अघोराचार और योगाचार का कुलार्णव में उल्लेख नहीं है। ये भिन्न सम्प्रदाय नहीं हैं। प्रत्येक साधक को इन भिन्न भिन्न श्रेणियों को पारकर अन्त में कौल की स्थिति प्राप्त करनी पड़ती है। वेदाचार में सभी वैदिक नित्य कर्म करने पड़ते हैं। इसके सिवा इसमें दूसरे सभी आचार शामिल रहते हैं। धर्म की दृढ़ता के लिए इस आचार में बाह्य और कर्मपरक पूजा होती है। यह कर्मकाण्डप्रधान है। दूसरे वैष्णवाचार में साधक अन्धविश्वास से निकल कर ब्रह्म की इच्छा-शक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है। यह भक्ति-प्रधान है। धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश के भाव से साधक शैवाचार में प्रवेश करता है। इसमें भक्ति और अन्तर्लक्ष का मेल होता है। यह ज्ञान-प्रधान है। इसके बाद दक्षिणाचार है। इसमें ब्रह्म की क्रिया, इच्छा और ज्ञान शक्तियों की ध्यान-धारणा की जाती है। साधक गुणत्रय के समन्वय का अनुभव करता है और पूर्णाभिषेक की स्थिति प्राप्त करता है। इस प्रकार वह शाक्त होता है और ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्तियों की पूजा करने का अधिकारी होता है। इसी स्थिति में साधक दीक्षा ग्रहण कर वामाचार का अधिकारी होता है। उक्त चारों आचारों को पार करने पर ही साधक इस स्थिति को प्राप्त करता है। ये चारों आचार दक्षिणाचार कहलाते हैं और मनुष्य जन्म से ही इनका

अधिकारी है। यहाँ तक प्रवृत्ति-मार्ग रहा। परन्तु वामाचार में प्रवेश करने पर वह निवृत्ति-मार्ग ग्रहण करता है। इस मार्ग में प्रवृत्ति की शक्ति का ऐसे ढङ्ग से उपयोग किया जाता है कि वह अपने आप विनष्ट हो जाय। इसमें केवल खाने-पीने और भोग की इच्छाओं का ही दमन नहीं किया जाता है, किन्तु साधक को आठ पाश भी तोड़ने पड़ते हैं। इस प्रकार वह शिवत्व को प्राप्त करता है। इस आचार में साधक जो निश्चय ग्रहण करता है वह क्रमशः अगले दोनों आचारों में पूर्ण होता है। साधक संसार की अविद्या से क्रमशः मुक्त हो जाता है और उसका किसी से राग नहीं होता, न किसी से द्वेष करता है, और न किसी से उसे लज्जा होती है, क्योंकि वह कुल, जाति और समाज के कृत्रिम बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि यह प्रतिबन्ध नहीं है कि साधक को इन प्रत्येक आचारों में क्रम से दीक्षित होना ही पड़ता है। वह किसी भी आचार से अपनी साधना का आरम्भ कर सकता है। यदि उसका जन्म वामाचारी वंश में हुआ है तो वह पूर्ण रूप से वाममार्ग का अधिकारी है, क्योंकि वह अपने पहले के जन्मों में प्रारम्भिक आचारों को पूर्ण कर चुका होता है।

परन्तु साधक को देवता की पूजा करने का तभी अधिकार

प्राप्त होता है जब वह 'पञ्च शुद्धियाँ'* करता है। आत्मशुद्धि, स्थानशुद्धि, मन्त्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि और देवताशुद्धि; यही पाँच शुद्धियाँ हैं। स्नान, भूतशुद्धि, प्राणायाम, षडङ्गादि न्यास करना आत्मशुद्धि है। पूजागृह को स्वच्छ रखना और उसे फूल-मालाओं से अलंकृत रखना तथा सुवासित करना स्थानशुद्धि है। मूल-मंत्र को मिलाकर मातृका-मंत्र का अनुलोम-विलोम जप करना मंत्र-शुद्धि है। मूल-मन्त्र और अस्त्र-मंत्र से अभिमंत्रित जल को पूजा-द्रव्यों पर छिड़ककर और उनको धेनु-मुद्रा दिखलाकर उन्हें अमृतमय बनाना द्रव्यशुद्धि है। देवता को उपयुक्त पीठ पर स्थापित कर प्राणमन्त्र से उसकी शक्ति का आवाहन कर उसे मूल-मंत्र से तीन बार स्नान करा कर वस्त्राभूषण पहना कर धूपदीप करके पूजन करना देवताशुद्धि है।

ऐसे ही साधक वाममार्गी होते हैं और उनके अर्चन में प्रसिद्ध पञ्चमकारों का उपयोग होता है। इनका उपयोग इस उद्देश से होता है कि सदाशिव से ऐक्य होकर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो। और पञ्चमकार अर्थात् मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन का उपयोग एकमात्र चक्रार्चन में ही विहित माना गया

* भूतिशुद्धिरात्मशुद्धिर्द्रव्याणां शोधनं तथा।
मंत्रशुद्धिर्देवशुद्धिः पञ्चशुद्धिरितीरिता ॥
पञ्चशुद्धिं विहीनेन यत्कृतं न च तत्कृतम्।
यावन्न कुरुते तत्तु तावद्देवतार्चनं कुतः ॥ कौलावली २ उल्लास।

है, अन्यत्र नहीं। इसके सिवा इनका अधिकारी केवल पूर्णाभिषिक्त साधक ही होता है, इतर साधक इनका संग्रह करने के अधिकारी नहीं माने गये हैं। इस दृष्टि से पञ्चमकार का उपयोग एकमात्र पूर्ण ज्ञान-प्राप्त साधकों के लिए ही विहित है।

ऊपर से पञ्चमकार का विधान साधारण लोगों को भले ही भयङ्कर प्रतीत हो, पर तान्त्रिक दृष्टि से इसका उद्देश रहस्यपूर्ण है। वास्तव में मद्य, मांस आदि पाँचों वस्तुएँ प्रलोभन की वस्तुएँ हैं। यदि साधक इनके प्रलोभन में नहीं पड़ता तो उसका मार्ग स्पष्ट है, वह परमानन्द को प्राप्त करता है। किसी साधक के लिए यह कोई हँसी-खेल का काम नहीं है कि उसके सम्मुख एक नवयौवना सुन्दरी बैठी हो और वह उसकी भगवती के रूप में अचल भाव से पूजा करता रहे। भगवती को अर्पण करने के बाद वह मद्य-पान भी करता है, पर मदोन्मत्त होने के लिए नहीं, किन्तु एकाग्र चित्त होकर अपने इष्ट पर ध्यान जमाने के लिए। वह मांस, मत्स्य तथा अन्य सुस्वादु भोजन-सामग्री (मुद्रा) भी खाता है, पर इसलिए नहीं कि ये स्वादिष्ट पदार्थ हैं, किन्तु धर्म-कार्यार्थ अपना शरीर पुष्ट बनाये रखने के लिए। पञ्चमकार के संग्रह का वस्तुतः यही उद्देश है। तान्त्रिक साधक इन आनन्ददायक पदार्थों के द्वारा ईश्वर का सान्निध्य ही प्राप्त करने को यत्नवान् होता है। ऐसी दशा में उसे अपने मनोभावों को दबाना पड़ता है और उन भोगों को उसे

इष्ट-सिद्धि का साधन बनाना पड़ता है। कितना दुर्धर्ष कार्य है, कितनी विकट साधना है, यह अपने आप स्पष्ट है।

इसी से 'कुलार्णव' में स्पष्ट कर दिया गया है कि पञ्चमकार का संग्रह दिल्लगी नहीं है। लिखा है—"अनेक लोगों की यह मिथ्या धारणा है कि मद्य-पान आदि से आत्मा पवित्र हो जाती है। ऐसा समझना सरासर भूल है। यदि ऐसा होता तो आज सारे मद्यप ब्रह्मज्ञानी हो जाते। यदि मैथुन-मात्र से मोक्ष सुलभ हो सकता तो उसकी उपलब्धि सभी के लिए एक साधारण बात हो गई होती। व्यर्थ का मद्यपान घोर पाप है। यहाँ तक कि उसकी गन्ध आजाने से पाप लगता है, अतएव द्विजों को सभी प्रकार के मद्यों से दूर रहना चाहिए। यदि कभी धोखे से मद्य पर निगाह पड़ जाय तो सूर्य का दर्शन कर लेना चाहिए, यदि कभी धोखे से उसकी गन्ध नाक तक पहुँच जाय तो प्राणायाम करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

'कुलार्णव' के इस अवतरण से स्पष्ट हो गया होगा कि व्यर्थ का मद्यपान स्वयं तन्त्रों में भी वर्जित है। उनमें उसका विधान केवल चक्रार्चन में है और सो भी पूर्ण अभिषिक्त साधकों के लिए ही है।

तान्त्रिक अर्चन में पञ्चमकार के सिवा पञ्चतत्त्वों का भी समावेश किया गया है। ये पाँच तत्त्व गुरुतत्त्व, मन्त्रतत्त्व,

मनस्तत्त्व, देवतत्त्व और ध्यानतत्त्व हैं । अर्थात् अर्चना के इन प्रधान अङ्गों का ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक साधक का प्रथम कर्तव्य है। उसे गुरु, मन्त्र, मन, देवता और इष्ट-ध्यान को पूर्णतः हृदयङ्गम करना चाहिए, अन्धवत् उनका अनुसरण नहीं करना चाहिए ।

तन्त्र का महत्त्व उसकी साधना की विधि में है। वह साधना की विधि न तो केवल उपासना या पूजा है, न प्रार्थना या स्तवन है और न इष्ट के आगे अपना दुखड़ा रोना तथा अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करना है। वह साधना पुरुष और प्रकृति के एक करने की क्रिया है । यह शरीर के भीतर पुरुष-तत्त्व तथा मातृ-तत्त्व का संयोग करती है और सगुण को निर्गुण करने का प्रयत्न करती है। तान्त्रिक साधना का यह उद्देश है कि स्वराट् विराट् में मिल जाय । और यह बात कुण्डलिनी को जाग्रत कर षट्चक्र के भेद-द्वारा की जाती है। यह कोई दार्शनिक चर्चा नहीं है, किन्तु इसे क्रिया-रूप में करना पड़ता है। इसी से तन्त्र गर्व के साथ घोषणा करता है—"सद्गुरु के निरीक्षण में अभ्यास करके देख लो । यदि शीघ्र ही कोई फल प्राप्त न हो तो छोड़ बैठना ।"

तन्त्र में धर्म के दो भाग हैं—एक समाज-धर्म और दूसरा साधना-धर्म है। समाज-धर्म में जन्म और वर्ण-भेद का विचार

है। पर साधना-धर्म में जात-पाँत का विचार नहीं है।* ब्राह्मण, शूद्र, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच का भेद नहीं किया गया है। उसमें एकमात्र अधिकारी का महत्त्व है।

तन्त्र किसी ऐसे ईश्वर का उपदेश नहीं करता जो सुदूर स्वर्ग में बैठा हुआ सारे ब्रह्माण्ड पर शासन करता हो। तन्त्र की दृष्टि में तो साधक का शरीर ही विश्व है और उसमें जो आत्म-शक्ति स्थित है वही उसका आराध्य देव है। साधना-द्वारा साधक इसी आत्मशक्ति का आत्मदर्शन करता है।

तन्त्र कहता है कि अगर तुम किसी का त्याग करना चाहते हो तो पहले उससे पूर्ण रूप से परिचित हो जाओ तब उसका त्याग करो और यदि तुम किसी वस्तु को स्वीकार करना चाहते हो तो तभी स्वीकार करो जब उसकी अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर लो। कहा भी है—अन्यान्यशास्त्रेषु विनोदमात्रं न तेषु किञ्चिद्भुवि दृष्टमस्ति। चिकित्सितज्योतिषतन्त्रवादाः पदे पदे प्रत्यवगाहयन्ति ॥ अर्थात् दूसरे सब शास्त्र मानसिक विनोद-मात्र हैं; उनका कोई फल इस संसार में दृष्टिगत नही होता। परन्तु चिकित्सा, ज्योतिष और तन्त्र-शास्त्र पद पद पर अपनी सत्यता प्रदान करते हैं।

---

* प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजोत्तमाः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ॥

२—स्वरूप-निरूपण

पार्वती उवाच

उच्छृङ्खला मदोन्मत्ताः पापकर्मरताः सदा।
कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखा शठाः ॥ १ ॥
स्वल्पायुर्मन्दमतयो रोगशोकसमाकुलाः।
निःश्रीका निर्बला नीचा नीचाचारपरायणाः ॥ २ ॥
नीचसंसर्गनिरताः परवित्तापहारकाः।
परनिन्दा परद्रोहपरिवादपराः खलाः ॥ ३ ॥
परस्त्रीहरणे पापशङ्काभयविवर्जिताः।
निर्धना मलिना दीना दरिद्राश्चिररोगिणः ॥ ४ ॥
विप्राः शूद्रसमाचारसन्ध्यावन्दनवर्जिताः।
अयाज्ययाजका लुब्धा दुर्वृत्ताः पापकारिणः ॥ ५ ॥

कलि के जीवगण शृंखलारहित (अर्थात जिनकी वेदादि-रूपी बेड़ियाँ कट गई हैं), मदोन्मत्त, सर्वदा पापों में लिप्त, कामी, धन के लोभी, क्रूर, निष्ठुर, अप्रियभाषी और शठ हो जायँगे ॥१॥

इस काल के लोग अल्पायु, मन्दमति, रोगशोक से युक्त, श्रीहीन, बलहीन, नीच होकर नीच कार्यों को करेंगे ॥ २ ॥ इस काल में सभी नीचों का संग करेंगे। पराये वित्त को हरण करने वाले, परनिंदा, परद्रोह, पराई हानि में तत्पर और खल हो जायँगे ॥३॥

अकार्यकारिणः क्रूरा धर्ममार्गविलोपकाः ।
हिताय यानि कर्माणि कथितानि त्वया प्रभो ! ॥ ६ ॥
मन्ये तानि महादेव विपरीतानि मानवे ॥७॥
युगधर्मप्रभावेण स्वभावेन कलौ नराः ॥८॥
भविष्यन्त्यतिदुर्वृत्ताः सर्वथा पापकारिणः ।
तेषामुपायं दीनेश कृपया कथय प्रभो ! ॥९॥

महानिर्वाण १ उल्लास

पराई स्त्री के हरण करने में ये लोग पाप की शंका या भय नहीं करेंगे। ये लोग निर्धन, मलिन, दीन और सदा रोगी रहकर समय बितायेंगे ॥४॥ ब्राह्मण सन्ध्यावंदन आदि से हीन हो शूद्र के समान आचार करेंगे। वे लोभ के वश होकर अयाज्य-याजन करेंगे अर्थात जिस पुरुष की पुरोहिताई करने से अधर्म होता है उसके पुरोहित बनकर यज्ञ करायेंगे और दुष्ट चरित्र हो पापकार्य करेंगे ॥५॥

ये बुरी क्रियाओं के करनेवाले, क्रूर और धर्ममार्ग का लोप करनेवाले होंगे। हे प्रभु, आपने प्राणियों के हितार्थ जिन कार्यों के करने का उपदेश किया है, मैं जानती हूँ कि कलियुग में वे कार्य मनुष्यों के लिए विपरीत हो जायँगे ॥७॥ युगधर्म के प्रभाव से कलियुगी मनुष्य स्वभाव से ही अत्यन्त दुर्वृत्त और पाप करने-वाले होंगे ॥ ८ ॥ हे प्रभु, हे दीनों के स्वामी, उनका क्या उपाय होगा सो आप कृपा करके मुझसे कहें ॥९॥ (महा० नि०१ उल्लास)

महादेव उवाच

धन्यासि सुकृतज्ञासि हितासि कलिजन्मनाम् ।
यद्यदुक्तं त्वया भद्रे सत्यं सत्यं यथार्थतः ॥ १० ॥
कलिकल्मषदीनानां द्विजादीनां सुरेश्वरि ॥ ११ ॥
मेध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा ।
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ॥ १२ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे ।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधीः ॥ १३ ॥
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णं फलप्रदाः ।
शास्ता कर्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु ॥ १४ ॥
निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव ।
सत्यादौ सफला आसन्कलौ ते मृतका इव ॥ १५ ॥
मदुक्तादुदितं धर्मं हित्वन्यद्धर्ममीहते ।
अमृतं स्वगृहे त्यक्त्वा क्षीरमार्कं स वाञ्छति ॥ १६ ॥
तन्त्राणि बहुधोक्तानि नानाख्यानान्वितानि च ।
सिद्धानां साधकानां च विधानानि च भूरिशः ॥१७॥

(महानिर्वाण तंत्र १ उल्लास)

तुम धन्य हो और सर्वज्ञ हो। वास्तव में तुम्हीं कलियुग के जीवों का हित करनेवाली हो। हे कल्याणी, तुमने जो कुछ मेरे प्रति कहा है सो सब यथार्थ में सत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह वास्तव में न्यायानुसार योग्य और सत्य है। हे सुरेश्वरि, कलि-

पारंपर्यक्रमायातं वक्त्राद्वक्त्रेषु संस्थितम् ।
अकथ्यं परमार्थेन तथापि कथयामि ते ॥१८॥
सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं परम ।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम ॥१९॥

कल्मष से ग्रसित, दीन भाव को प्राप्त द्विज आदिकों को पवित्र-अपवित्र का विचार नहीं रहेगा, इस कारण वे लोग श्रुति-स्मृति और संहिता में कहे हुए कर्मों का संपादन करके किस प्रकार शुद्ध होंगे ॥११-१२॥ हे शिवा, मैंने पहले श्रुति, स्मृति और पुराण आदि में कहा है कि कलि-युग में तान्त्रिक विधान से पण्डित लोग देवताओं की पूजा करें । ॥१३॥ कलिकाल में तंत्र में कहे हुए समस्त मंत्र सिद्ध और सिद्धि के देनेवाले होते हैं । ये समस्त मन्त्र समस्त कर्म और जपयज्ञादि में श्रेष्ठ हैं ॥१४॥ जिस प्रकार विषहीन सर्प की अवस्था हो जाती है, वैसे ही इस समय वैदिक मंत्र आदि वीर्य-रहित और मृतकतुल्य हो रहे हैं । वे मन्त्र सत्ययुग, त्रेता और द्वापरयुग के अधिकार में थे ॥१५॥ जो मनुष्य मेरे मुख से निकले हुए धर्म की अवहेलना करके अन्य धर्म को ग्रहण करता है वह पुरुष अपने घर में रक्खे हुए अमृत को छोड़कर आक का दूध चाहता है ॥१६॥ हमने अनेक प्रकार के आख्यानों से युक्त अनेक प्रकार के तन्त्र प्रकाशित किये हैं, उनमें साधकों व सिद्धों के अर्थ नानाविध व्यवस्था लिखी हुई है ॥१७॥ महा नि० १ उल्लास

दक्षिणादुत्तमं वामं वामात्सिद्धान्तमुत्तमम ।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात्परतरं न हि ॥२०॥
गुह्याद्गुह्यतमं देवि सारात्सारतरं परम ।
साक्षात्परतरं देवि कर्णात्कर्णगतं कुलम ॥२१॥
मथित्वा ज्ञानमन्थेन वेदागममहार्णवम ।
सारज्ञेन मया देवि कुलधर्मं समुद्धृतः ॥२२॥
प्रविशन्ति कुलं धर्मं ये वै सुकृतिनो नराः ।
ते पुनर्जननी गर्भं न विशन्ति कदाचन ॥२३॥

कुलार्णवे द्वितीयसमुल्लासे

वह तत्त्व परम्परा के क्रम से चला आ रहा है, एक के मुख से दूसरे के मुख में स्थित रहा है। यद्यपि वह बतलाने के योग्य नहीं है, तो भी परमार्थ के विचार से तुमसे कहूँगा ॥१८॥ सबसे श्रेष्ठ वेदाचार है, वेदाचार से वैष्णवाचार श्रेष्ठ है, वैष्णवाचार से शैवाचार उत्तम है, शैवाचार से दक्षिणाचार उत्तम है ॥१९॥ दक्षिणाचार से उत्तम वामाचार और वामाचार से सिद्धान्ताचार तथा सिद्धान्ताचार से कौलाचार उत्तम है। कौलाचार से परे फिर कोई नहीं है ॥२०॥यह कौलाचार गुप्त से भी गुप्ततर और सार वस्तु से भी सारतर वस्तु है। हे देवी, यही साक्षात् परम तत्त्व है, और यह एक कान से दूसरे कान में होता हुआ बराबर अस्तित्व में रहा है ॥२१॥ हे देवी, वेद और आगम रूपी महासमुद्र को ज्ञान-दण्ड से मथकर सारतत्त्व के ग्रहण करनेवाले महादेव ने 'कुलधर्म' को

दर्शनेषु च सर्वेषु चिराभ्यासेन मानवाः ।
मोक्षं लभन्ते कौले तु सद्य एव न संशयः ॥२४॥
सर्वे धर्माश्च देवेशि पुनरावर्तकाः स्मृताः ।
कुलधर्मस्थिता ये च ते सर्वेऽप्यनिवर्तकाः ॥२५॥

कुल-प्रदीपे

कुलाचारं विना देवि कलौ सिद्धिर्न जायते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधयेत् कुलसाधनम् ॥२६॥

उत्पन्न किया है ॥२२॥ जो सुकृती जन कुल-धर्म में प्रवेश करते हैं वे फिर कभी जन्म ग्रहण नहीं करते—वे संसार-बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥२३॥ (कुलार्णव २ उल्लास)

दर्शनों का अधिक समय तक अभ्यास करने पर ही उससे मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होता है, परन्तु कौल को शीघ्र ही मुक्ति मिल जाती है । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥२४॥ हे देवेश्वरी, सभी धर्मवालों को फिर यहाँ लौटकर आना होगा । उनके सम्बन्ध में यही कहा गया है । परन्तु कुल-धर्मवालों को यहाँ नहीं लौटना पड़ेगा, सब मुक्त हो जायँगे ॥२५॥ (कुल-प्रदीप)

बिना कुलाचार के इस कलिकाल में उद्देश-सिद्धि अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है । अतएव सभी उपायों से कुलाचार की साधना में तत्पर होना चाहिए ॥२६॥

कुलाचारेण देवेशि ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ब्रह्मज्ञानयुतो मर्त्यो जीवन्मुक्तो न संशयः ।।२७।।

महानिर्वाण ४ उल्लास

ये कुर्वन्ति कुलाचारं सत्यपूता जितेन्द्रियः ।
व्यक्ताचारदयाशीला न हि तान वाधते कलिः ।। २८ ।।
गुरुसुश्रूषणे युक्ता भक्ता मातृपदाम्बुजे ।
अनुरक्ताः स्वदारेषु न हि तान बाधते कलिः ।। २९ ।।
कौटिल्यानृतहीनानां स्वच्छानां कुलमार्गिणाम ।
परोपकारव्रतिनां साधूनां किंकरः कलिः ।। ३० ।।

महानिर्वाणे

हे देवेश्वरी, कुलाचार की साधना से ब्रह्मज्ञान का अनुभव होता है और जिस व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान का अनुभव हो जाता है वह जीते-जी मुक्त हो जाता है ।।।२७।। (महानिर्वाण ४ उल्लास)

जो साधक सत्यव्रती, पवित्र और जितेन्द्रिय होकर कुलाचार करते हैं तथा जिनका आचार व्यक्त रहता है एवं जो दयाशील होते हैं उन्हें कलिकाल बाधा नहीं देता है। ।।२८।। जो गुरु की सेवा में संलग्न रहते हैं, जिनको जगज्जननी के कमलचरणों की भक्ति है, जो अपनी स्त्री से अनुरक्त रहते हैं, उनको कलि बाधक नहीं होता है ।।२९।। जो कुटिलता और मिथ्या भाषण नहीं करते हैं, जो पवित्र रहते हैं, जिनका परोकार का व्रत रहता है, ऐसे साधु कुलमार्गियों का कलि दास हो जाता है ।।३०।। (महानिर्वाण)

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरेव च जातिभिः ।
वाममार्गप्रभावेण कर्तव्यं जपपूजनम ॥ ३१ ॥

मुण्डमालातंत्रे सप्तमपटले

मूर्खो वा पण्डितो वापि ब्राह्मणो वा वरानने ।
क्षत्रियो वैश्यजः शूद्रश्चाण्डालो वरवर्णिनि ॥ ३२ ॥
सर्वे तुल्याः कुलीनाश्च एतन् सर्वार्थसाधनम ॥ ३३ ॥

मुण्डमालातंत्रे पंचमपटले

गगायां पतिताम्भांसि यान्ति गांगेयतां यथा ।
कुलाचारं विशन्तोपि सर्वे गच्छन्ति कौलताम ॥३४॥ महानिर्वाणे

अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियों को वाममार्ग के अनुसार ही जप-पूजा करनी चाहिए ॥३१॥ (मुण्डमाला-तंत्र ७ पटल) हे श्रेष्ठ मुखवाली, मूर्ख हो चाहे पण्डित हो, हे श्रेष्ठ रंगवाली, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शूद्र हो, चाहे चाण्डाल हो, सभी कुलधर्मानुयायी समान हैं। यह धर्म सब अर्थों का प्रदान करनेवाला है ॥३२-३३ (मु०मा० ५ प०) । जैसे गंगा में बहकर मिलने वाले सब जल गंगाजल हो जाते हैं, उसी तरह कुलाचार में प्रवेश करने पर सभी साधक कौल हो जाते हैं ॥३४॥ (महानिर्वाण) तीनों लोकों में कुलपूजा के समान दूसरा कोई पुण्यकार्य नहीं है। इसलिए जो इस पूजा को भक्तिपूर्वक करता है वह साधक भोग और मोक्ष दोनों का अधिकारी हो जाता है ॥३५॥ (कुलार्णव ५ उल्लास)

कुलपूजासमं नास्ति पुण्यमन्यज्जगत्रये ।
तस्माद् यः पूजयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम् ॥ ३५

कुलार्णवे ५ उल्लासे

निन्दन्तु बान्धवाः सर्वे त्यजन्तु स्त्रीसुतादयः ।
जना हसन्तु मां दृष्ट्वा राजानो दण्डयन्तु वा ॥३६॥
सेवे सेवे पुनः सेवे त्वामेव परदैवते ।
त्वद्धर्म्मं नैव मुञ्चामि मनोवाक्कायकर्मभिः ॥३७॥
एवमापद्गतस्यापि यस्य भक्तिः सुनिश्चला ।
स तु संपूज्यते देवैरमुत्र स शिवो भवेत् ॥३८॥
रोगदारिद्र्यदुःखाद्यैः पीडितोऽप्यनिशं शिवे ।
यस्त्वामुपासते भक्त्या नरः सद्गतिमाप्नुयात् ॥३९॥

सब भाई-बन्धु चाहे निन्दा करें, स्त्री-पुत्र आदि भी चाहे छोड़ दें, मुझे देखकर लोग चाहे हँसें अथवा चाहे राजा भी दंड दे। परन्तु हे परदेवता, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा; फिर भी तुम्हारी ही सेवा करूँगा। मन, वाणी और शरीर से तुम्हारा धर्म कभी नहीं छोड़ूँगा ॥ ३६-३७ ॥ इस तरह संकट-प्राप्त जिस साधक की भक्ति भले प्रकार स्थिर रहती है उसकी देवताओं-द्वारा पूजा होती है और मरने पर वह शिव होता है ॥३८॥ हे शिवा, रोग, दुःख, और दारिद्र से पीड़ित जो व्यक्ति भक्ति से तुम्हारी उपासना करता है वह सद्गति को प्राप्त करता है ॥३९॥।

जना स्तुवन्तु निन्दन्तु लक्ष्मीस्तिष्ठतु गच्छतु ।
मृत्युरद्य युगान्ते स्यात्कुलं न परिवर्जयेत् ॥४०॥
कुलार्णवे द्वितीय उल्लासः

ते धन्याः ते महात्मानः कृतार्थास्ते नरोत्तमाः ।
येषामुत्पद्यते चित्ते कुलज्ञानं मयोदितम ॥४१॥
कुलेशि कुलनिष्ठानां कौलिकानाम् महात्मनाम् ।
ददामि परमं ज्ञानमन्त्यकाले विशेषतः ॥४२॥
समाष्टकं प्रवक्ष्यामि शृणुष्वेकाग्रमानसा ।
येन विज्ञानमात्रेण सिद्धिर्भवति साधके ॥ ४३ ॥
घातयेद् गोपयेद् देवि न निन्देन्न निरीक्षयेत् ।
पूजयेत्भावयेच्चैव वर्जयेन्न जुगुप्सयेत् ॥ ४४ ॥

लोग चाहे प्रशंसा करें चाहे निन्दा, धन रहे,चाहे चला जाय, चाहे आज मृत्यु हो चाहे युगान्त में हो, साधक कुलधर्म का परित्याग न करे ॥४०॥ (कुलार्णव) जिनके मन में मेरे कहे हुए कुलधर्म का ज्ञान उत्पन्न होता है वे धन्य हैं, वे महात्मा हैं, वे कृतार्थ हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष हैं ॥४१॥ हे कुलेशी, कुलधर्मनिष्ठ महात्मा कौलों को मैं परम ज्ञान प्रदान करता हूँ। उनके अन्तकाल में तो विशेष करके प्रदान करता हूँ ॥४२॥ अब मैं सम अष्टकों को कहता हूँ। एकाग्र मन से सुनो ! इनके ज्ञान से साधक को सिद्धि प्राप्त होती है ॥४३॥ हे देवी, मारे, छिपावे, न निन्दा करे, न देखे, पूजन करे, भावना करे, तिरस्कार करे और घृणा न करे ॥४४॥

कामं क्रोधं च मात्सर्यं विकारं चेन्द्रियोद्भवम् ।
निद्रालस्यं दौर्मनस्यं घातयेदष्टकं प्रिये ॥ ४५ ॥
मंत्रमुद्राक्षसूत्रं च योगिनीवीरसंगमम् ।
भैरवागममाचारमेतत्सर्वं च गोपयेत ॥ ४६ ॥
देवं गुरुं सुरां विद्यां ज्येष्ठं वीरञ्च योषितम् ।
शुभाशुभाः कर्मणश्च निन्दयेन्न कदाचन ॥ ४७ ॥
कन्यां योनिं पशुक्रीडां नग्नस्त्रीं प्रकटस्तनीम् ।
द्यूतविग्रहक्लीवञ्च पापिनं न च वीक्षयेत ॥ ४८ ॥
देवीं गुरुं सुधां विद्यां शक्तिं ज्येष्ठञ्च संविदम् ।
भक्तितः साधकान सर्वान पूजयेच्च प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥

हे प्रिया पार्वती, काम, क्रोध, ईर्ष्या, मनोविकार, इन्द्रिय-विकार, निद्रा, आलस्य, और मन की दुर्बलता, इन आठों का नाश करे ॥४५॥ मंत्र, मुद्रा, माला, सूत्र, योगिनी और वीर का संयोग, भैरव, आगम और आचार, इन सब आठों को छिपावे ॥४६॥ देवता, गुरु, मद्य, विद्या, ज्येष्ठ, वीर साधक, स्त्री और शुभाशुभ कर्म इन आठों की निन्दा कभी नहीं करे ॥४७॥ नग्न कन्या, पशु-क्रीड़ा, नग्न-स्त्री, प्रकटस्तनी स्त्री, जुआ, लड़ाई-झगड़ा, नपुंसक और पापी इन आठों को नहीं देखे ॥४८॥ देवी, गुरु, मद्य, विद्या, शक्ति, ज्येष्ठ, भंग और सब साधकों की यत्न के साथ भक्तिपूर्वक पूजा करे ॥४९॥

गुरुनामं च तत्पादावागमार्थञ्च मंत्रकम् ।
भैरवं भैरवीं तत्त्वं कुलाचारं च भावयेत ॥ ५० ॥
शाठ्यं मोहञ्च पैशुन्यं परद्वेषं च चक्रणाम ।
व्यसनं मंत्रित्वहं च प्रमादं च विवर्जयेत ॥ ५१ ॥
विण्मूत्रं शोणितं क्लेदं हीनाङ्गीं पिशितं सुराम ।
कपालहरणञ्चैव अष्टौ नैव जुगुप्सयेत ॥ ५२ ॥
इत्येतत्समयाचारं यः पालयति साधकः ।
स प्राप्य देवि सद्भावं जीवन्मुक्तिं च विन्दति ॥ ५३ ॥

कुलप्रदीपे

चतुरशीति लक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम ।
न मानुष्यं विनान्यत्र तत्त्वज्ञानन्तु लभ्यते ॥५४॥

गुरुनाम, गुरुचरण, आगम-अर्थ, मंत्र, भैरव, भैरवी, तत्त्व और कुलाचार, इन आठों की भावना किया करे । ॥५०॥ शठता, मोह, दुष्टता, परद्वेष, कुटिलता, व्यसन-भाव, विश्वासघातकता और प्रमाद, इन आठों का वर्जन करे ॥५१॥ मल, मूत्र, रक्त, सील, हीनांगी, मांस, मद्य और कपालहरण: इन आठ से कभी घृणा न करे । हे देवी, जो इस समयाचार का पालन करता है वह साधक सद्भाव को प्राप्त कर जीवन्मुक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है ॥५३॥ (कुलप्रदीप)

शरीरधारियों की चौरासी लाख योनियों में मनुष्य-योनि को छोड़कर और किसी योनि में तत्त्वज्ञानकी उपलब्धि नहीं होती ॥५४॥

विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते ।
तस्माद्देहधनं रक्ष्यं पुण्यकर्माणि साधयेत् ॥५५॥
यावत्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्त्वं समभ्यसेत ।
सन्दीप्ते भवने को वा कूपं खनति दुर्मतिः ॥५६॥
अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे ।
लपन्तमिति मर्त्यं हि हन्ति कालवृकोदरः ॥५७॥
ब्रह्मविष्णुमहेशादि देवताभूतजातयः ।
नाशमेवानुधावन्ति तस्माच्छ्रेयः समाचरेत ॥५८॥
वेदाद्यनेकशास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः ।
तस्मात्सारं विजानीयात् क्षीरं हंसमिवाम्भसि ॥५९॥

बिना देह के किसी में पुरुषार्थ का अस्तित्व नहीं होता । अतएव देह-धन की रक्षा करके साधक पुण्य कर्मों का सम्पादन करे ॥५५॥ जब तक यह देह स्थित है तब तक तत्त्वों का अभ्यास करे, क्योंकि घर में आग लगने पर दुर्मति ही कुआ खोदना प्रारम्भ करेगा ॥ ५६ ॥ मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा धन, मेरे बन्धु-बान्धव--- इस तरह विलाप करते हुए प्राणी को भेड़िये के पेटवाला काल मार डालता है ॥ ५७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता और भूत-जातियाँ सभी नाश को प्राप्त होती हैं, अतएव जो श्रेय है उसी को ग्रहण करना चाहिए ॥५८॥ वेदादि शास्त्र अनेक हैं, आयु अल्प है, करोड़ों विघ्न उपस्थित हैं, अतएव जैसे हंस पानी से दूध निकाल लेता है, उसी तरह सार का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥५९॥

न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि ।
ज्ञानादेव हि मुक्तिः स्यान्नान्यथा वीरवन्दिते ॥६०॥
कुलार्णवे प्रथमोल्लासे

महाभैरवकालोऽयं शिवस्य वामनायकः ।
अयन्तु वामभावेन पूज्यो मद्यादिभिः सदा ॥६१॥
चण्डेश्वरः शूलपाणिः कथितौ वामनायकौ ।
भैरवाद्यास्तवाथामास्तथाऽन्ये वटुकादयः ॥६२॥
विष्णोस्तु वामका मूर्तिर्नृसिंहो हयो भवेत् ।
रामकृष्णौ च गोपालौ कथितौ वामनायकौ ॥६३॥
मार्तण्डभैरवो ममूर्तिस्सूर्यस्य कीर्तिता ।
गणेशस्य तु वेतालः उच्छिष्टो वामसेवितः ॥६४॥

न तो वेदों के अध्ययन से मुक्ति प्राप्त होती है, न शास्त्रों के पढ़ने से प्राप्त होती है, किन्तु ज्ञान से ही प्राप्त होती है। हे वीरवन्दित पार्वती, इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ॥६०॥ (कुलार्णव प्र०उ०)।

इस कलिकाल में शिव के वामनायक महाभैरव हैं। इनकी पूजा मद्यादि से वाम-भाव से करनी चाहिए ॥६१॥ चण्डेश्वर, शूलपाणि, वटुक आदि भी इनके ऐसे ही रूप हैं ॥६२॥ विष्णु के वामभाव के रूपों में नृसिंह, राम, कृष्ण और गोपाल हैं ॥६३॥ सूर्य का मार्तण्डभैरव का रूप और गणेश का वेताल तथा उच्छिष्ट के रूप वामभाव से पूज्य हैं ॥६४॥

इन्द्रादयो दिगीशा ये ते सर्वे वामपूजिताः ।
भौमः शुक्रो बुधः सौरिरेते वामास्तथा विधुः ॥६५॥
असिताङ्गादयश्चाष्टौ तथा ब्रह्मयादि मातरः ।
श्मशानभैरवी काली उग्रतारा च पञ्चमी ॥६६॥
त्रिपुरा भैरवी चैव तारा त्रिपुरसुन्दरी ।
उन्मुखी चैव दुर्गा च मर्दिनी स्वप्रबोधिनी ॥६७॥
एतास्तु वामभावेन पूज्या दक्षिणतां बिना ॥६८॥
अन्याश्च चण्डिका देव्या वामिका मूर्तयः स्मृताः ।
लक्ष्म्याद्या वामिकाः प्रोक्ता मूर्तयो बगलादयाः ॥६९॥
महालक्ष्मी पूजनीया वामभावेन सर्वदा ।
वाग्भवी च सरस्वत्या वामिका मूर्तिरीरिता ॥७०॥
तारिणी दक्षिणाकाली सुन्दरी भैरवी तथा ।
सदा वामक्रमाचारैः सिद्ध्यन्ति नात्र संशयः ॥७१॥

इन्द्र आदि दिग्पालों एवं भौम, शुक्र, बुध और सौरि आदि ग्रहों की पूजा वामाचार से होनी चाहिए ॥६५॥ असितांग आदि आठों भैरव और ब्राह्मी आदि मातायें, श्मशान भैरवी, काली, उग्रतारा, पञ्चमी, त्रिपुरा, भैरवी, तारा, त्रिपुरसुन्दरी, उन्मुखी, दुर्गा, महिषमर्दिनी आदि की पूजा एक-मात्र वामाचार से करनी चाहिए ॥६६-६८॥ चण्डिका, लक्ष्मी आदि एवं बगला आदि, महालक्ष्मी, वाग्भवी, सरस्वती, तारिणी, दक्षिणा काली, सुन्दरी, भैरवी आदि की पूजा सदा वामाचार से करनी चाहिए ॥६९-७१॥

विना वामेन सिद्धः स्यान्मातंगी छिन्नमस्तिका ॥७२॥
वामप्रधाना ये मन्त्रास्ते वै चन्द्राश्रिता मता ।
आगमोक्तविधानेन सिद्धाश्चन्द्राश्रितास्तु वै ॥७३॥

(कुलावल्याम)

यो भावो यस्य वै प्रोक्तस्तद्भावं यदि नाश्रयेत् ।
विरुद्धभावमाश्रित्य भ्रष्टो भवति साधकः ॥७४॥

समयाचारतन्त्र

अतिगुह्येन कर्तव्यो कुलार्चनकुलीनकैः ।
गोपनाद् धर्मरक्षा स्यात् व्यक्तः धर्मो विनश्यति ॥७५॥

कल्पलतायाम

मातंगी और छिन्नमस्ता की साधना विना वामभाव के सिद्ध ही नहीं हो सकती ॥७२॥ जो मन्त्र वामभावप्रधान हैं वे चन्द्राश्रित कहे गये हैं और चन्द्राश्रित मंत्रों की साधना आगम के विधान के अनुसार करने से ही सिद्ध होती है ॥७३॥ (कुलावली)

जो भाव जिस देवता के लिए प्रयुक्त है, यदि उसका वह भाव न ग्रहण किया जाय और उसके विरुद्ध भाव का आश्रय लिया जाय तो ऐसा करनेवाला साधक भ्रष्ट हो जायगा ॥७४॥ (समयाचारतंत्र)

साधकों को कुलार्चन अति गुप्त रूप से करना चाहिए। उसके गुप्त रूप से करने से धर्म की रक्षा होती है और प्रकट रूप से करने से धर्म का नाश होता है ॥ ७५ ॥ (कल्पलता)

मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैः मुद्राभिर्मैथुनैरपि ।
स्त्रिया सार्द्धं सदा साधुरर्चयेज्जगदम्बिकाम ॥७६॥

कामाख्यातन्त्रे

सुराशक्तिः शिवो मांसं तद्भोक्ता भैरवः स्वयम् ।
तयोरैक्यं समुत्पन्नमानन्दो मोक्ष उच्यते ॥७७॥
आनन्दो ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम् ।
तस्याभिव्यञ्जकं मद्यं योगिभिस्तेन पीयते ॥७८॥
मन्त्रसंस्कारसंशुद्धाऽमृतपानेन पार्वति ।
जायते देवताभावो भवबन्धविमोचकः ॥७९॥
तृप्त्यर्थं सर्वदेवानां ब्रह्मज्ञानार्थमेव च ।
सेवेत मद्यमांसानि तृष्णया चेत्स पातकी ॥८०॥

साधु पुरुष स्त्री के साथ जगदम्बिका का अर्चन मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन के द्वारा सदा करे ॥७६॥ (कामाख्यातंत्र)

मद्य शक्ति है, मांस शिव है, इनका भोक्ता स्वयं भैरव है। इन दोनों के ऐक्य से जो आनन्द उत्पन्न होता है उसी को मोक्ष कहते हैं ॥ ७७ ॥ आनन्द ब्रह्म-रूप है। वह देह में विद्यमान रहता है। उसका अभिव्यञ्जक मद्य है, अतएव योगियों को उसका पान करना चाहिए ॥ ७८ ॥ हे पार्वती, मन्त्रों के संस्कार से भले प्रकार शुद्ध अमृत-रूप मद्य के पान से देव-भाव उत्पन्न होता है, जो इस संसार के बन्धन से साधक को मुक्त करता है ॥ ७९ ॥ सब देवताओं की तृप्ति और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के

मन्त्रार्थस्फुरणार्थाय मानसः स्थैर्यहेतवे ।
भवपाशनिवृत्यर्थम्मधुपानं समाचरेत् ॥८१॥

कुलार्णवे पञ्चमोल्लासे

मत्स्यमांससुरादीनां पदार्थानां विशेषतः ।
पूजाकालं विनान्यत्र न मया परिकीर्तितः ॥८२॥ समयाचारे
पञ्च ब्रह्मऋचा पञ्च द्रव्याणां परिशोधनम् ।
अज्ञात्वा यश्चरेत्कर्म स महापातकी भवेत् ॥८३॥ कालिकाकुलसर्वस्वे
अभिषेकविहीनैश्च प्रपञ्चव्रतधारिभिः ।
पशुभिः सह धर्मैस्तैर्न कुर्यात्पानभोजनम् ॥८४॥ मायातन्त्रे

लिए मद्य, मांस आदि का सेवन करे। जो साधक इनका तृष्णा से सेवन करेगा वह पापी होगा ॥ ८० ॥ मन्त्र के अर्थ के स्फुरण के लिए, मन की स्थिरता के हेतु, संसार के बन्धन से निवृत्त होने के लिए मद्य-पान अवश्य करे ॥ ८१ ॥ (कुलार्णव प० उ०) पूजा-काल को छोड़कर मैंने विशेष कर मद्य, मांस, मत्स्य आदि पदार्थों को और किसी अवसर के लिए विहित नहीं ठहराया है ॥८२॥ (समयाचार) पाँचों ब्रह्म ऋचायें और पाँचों द्रव्यों की शोधन-विधि बिना जाने हुए जो कोई चक्रार्चन के नाम से इन पदार्थों का उपभोग करता है वह महापापी होता है ॥८३॥ (कालिकाकुलसर्वस्व) अभिषेक-हीन, व्रतादि का प्रपंच करनेवाले पशुओं के साथ उनके धर्मानुसार पान-भोजन कभी नहीं करना चाहिए ॥८४॥ (मायातंत्र)

अयष्ट्वा भैरवं देवं अकृत्वा मंत्र-तर्पणम् ।
पशुपानविधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत् ॥८५॥
कौलज्ञाने ह्यसिद्धो यस्तद् द्रव्यं भोक्तुमिच्छति ।
स महापातकी ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥८६॥
मद्याशक्तो न पूजार्थी मांसाशी स्त्रीनिषेवकः ।
कौलोपदेशहीनो यः सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ॥८७॥
स्वेच्छया रममाणो यो दीक्षासंस्कारवर्जितः ।
न तस्य सद्गतिः क्वापि तपस्तीर्थव्रतादिभिः ॥८८॥
असंस्कृतं पिबेद् द्रव्यं बलात्कारेण मैथुनम् ।
स्वप्रियेण हृतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥८९॥ कुलार्णवे

भैरव का पूजन और मंत्र-तर्पण किये बिना जो पशुपान की विधि से मद्य का पान करता है वह वीर साधक भी नरकगामी होता है ॥८५॥ जो व्यक्ति कौल-ज्ञान से रहित है और कौलों के लिए निर्दिष्ट पदार्थों के उपभोग की इच्छा करता है उसे महापापी समझना और धार्मिक कर्मों से दूर रखना चाहिए ॥८६॥ जो व्यक्ति पूजा करने की इच्छा नहीं करता है, किन्तु मद्यपान, मांस-भक्षण और स्त्री-भोग में आसक्त है ऐसा कौल-दीक्षा से रहित व्यक्ति अक्षय नरक को गमन करता है ॥८७॥ जो अदीक्षित व्यक्ति मनमाने ढंग से मद्यादि के भोगों में लिप्त है वह लाख तप, तीर्थ-यात्रा, व्रतादि करने से सद्गति को नहीं प्राप्त होगा ॥८८॥ जो व्यक्ति असंस्कृत मद्य का पान करता है, बलपूर्वक स्त्री-सम्भोग

अनिवेद्य तु यः शक्त्यै कुलद्रव्यं निषेवते ।
पूजितं निष्फलं तस्य देवता न प्रसीदति ॥९०॥
मातृरूपां परित्यज्य स्त्रीरूपां शक्तिमाचरेत् ।
स याति नरकं घोरं जन्म कोटि शतानि च ॥९१॥
मन्त्रमाता च पुत्री च भगिनी च कुलांगना ।
न रमेत् कौलिको नित्यमेताः सम्यक् समर्चयेत् ॥९२॥ रुद्रयामले
पाठो होमश्चातिथीनां सेवनं देवपूजनम् ।
पितृश्राद्धं कुलाचारं तत्त्वज्ञानं सदाचरेत् ॥९३॥

करता है और अपनी तृप्ति के लिए पशुवध करता है वह रौरव नाम के नरक को प्राप्त होता है ॥८९॥ (कुलार्णव) ।

जो साधक बिना शक्ति को अर्पित किये हुए कुल-द्रव्यों का उपभोग करता है उसकी पूजा निष्फल होती है और उसपर देवता भी नहीं प्रसन्न होते ॥९०॥ जो साधक शक्ति को मातृ-रूप में न ग्रहण कर स्त्री-रूप में ग्रहण करता है और तदनुसार उसके साथ व्यवहार करता है वह सौ करोड़ जन्मों तक घोर नरक को प्राप्त होता है ॥९१॥ मंत्र देनेवाली माता, पुत्री, बहन और कुलांगना के साथ कौल साधक कभी रमण न करे। इनकी तो उसे नित्य अच्छी तरह पूजा ही करनी चाहिए ॥९२॥ (रुद्रयामल) साधक को सदा स्तव-पाठ, हवन, अतिथि-सेवा, देव-पूजा, पितृश्राद्ध, कुलाचार और तत्त्व-बोध करना चाहिए ॥९३॥

मातृः पितृन् शिशून् दारान् स्वजनान् बान्धवानपि ॥
यः प्रव्रजति हित्वैतान स महापातकी भवेत् ॥९४॥
गार्हस्थं प्रथमं धर्म्यं सर्वेषां मनुजन्मनाम ॥ ९५ ॥
त्वमाद्ये जगतां माता पिता ब्रह्मपरात्परम ।
युवयोः प्रीणनं यस्मात् तस्मात् किं गृहिणान्तपः ॥ ९६ ॥
वहुनात्र किमुक्तेन तवाग्रे सत्यमुच्यते ।
भवाब्धितरणेसेतुः कुलधर्मो हि नापरः ॥ ९७ ॥ महानिर्वाण

माता, पिता, पुत्रों, स्त्रियों, स्वजनों और बान्धवों आदि इन सबको छोड़कर जो साधु होकर घर छोड़कर चला जाता है वह महापापी होता है ॥९४॥ गृहस्थ-धर्म सब मनुष्यों के लिए पहला धर्म है ॥ ९५ ॥ हे आद्या, तू जगत् की माता है और परब्रह्म उसके पिता हैं। जिसधर्म के द्वारा गृहस्थ तुम दोनों को सन्तुष्ट करते हैं उसके आगे उनके लिए और कौन दूसरा तप हो सकता है ॥ ९६ ॥ अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ। इस भवसागर को पार करने के लिए एक कौल-धर्म ही सेतु है ॥९७॥ (महानिर्वाण)

३—साधना-क्रम

पूर्वार्द्ध

(१) प्रातःकृत्य

साधक ब्रह्म-मुहूर्त में सोकर उठे और आलस्य त्यागकर बिछौने पर बैठ जाय। इसके बाद वह अपने गुरु का मस्तक के सहस्त्रदलकमल-चक्र में ध्यान करे। यथा—

ध्यायेच्छिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
श्वेताम्बरपरीधानं श्वेतमाल्यानुलेपनम्।
वराभयकरं शान्तं करुणामय विग्रहम्।
स्मेराननं सुप्रसन्नं साधकाभीष्टदायकम्॥ (क)

गुरुदेव का ध्यानकर साधक उनकी पूजा-द्रव्यों से मानसिक

(क) अर्थात् गुरुदेव के दो नेत्र और दो हाथ हैं। वे श्वेत कमल पर पद्मासन में बैठे हैं, श्वेत वस्त्र पहने, चन्दन-चर्चित और श्वेतपुष्पों की माला से विभूषित हैं। एक हाथ से अभय और दूसरे से वरदान दे रहे हैं। वे शान्त और दया की मूर्ति हैं। उनके बायें उनकी शक्ति हाथ में कमल का एक फूल लिये हुए और उनका आलिङ्गन किये हुए विराजमान हैं। वे दोनों मुस्करा रहे हैं। इस प्रकार अपने शिष्य पर कृपा का भाव प्रकट कर रहे हैं।

पूजा करे। यथा—अमुक (ख) आनन्दनाथ अमुकी शक्त्याम्बा श्री पादुकाम् पूजयामि आकाशात्मकम् पुष्पं समर्पयामि नमः—यह मंत्र पढ़कर दोनों अँगूठों से आकाश को पुष्प के रूप में प्रदान करे। अमुक आनन्दनाथ अमुकी शक्त्याम्बा श्री पादुकां पूजयामि लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः—यह मंत्र पढ़कर दोनों कनिष्ठाओं से पृथिवी को चन्दन आदि गन्ध के रूप में प्रदान करे। अमुक आनन्दनाथ अमुकी शक्त्याम्बा श्री पादुकां पूजयामि यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः—यह मंत्र पढ़कर दोनों तर्जनियों से वायु को धूप के रूप में अर्पित करे। अमुक आनन्द-नाथ अमुकी शक्त्याम्बा श्री पादुकाम पूजयामि रं वन्ह्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः—यह मंत्र पढ़कर दोनों मध्यमाओं से अग्नि को दीप के रूप में अर्पित करे। अमुक आनन्दनाथ अमुकी शक्त्याम्बा श्री पादुकां पूजयामि वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः—यह मंत्र पढ़कर दोनों अनामिकाओं से अमृत को नैवेद्य के रूप में प्रदान करे।

इसके बाद साधक यथाशक्ति (१० या १०० बार) 'ऐं'-वीज-मन्त्र का जप करे। जप कर चुकने के बाद वह जप-फल गुरुदेव के दाहने हाथ में अर्पित कर दे। तब वह उनको आगे के मन्त्र से प्रणाम करे—

(ख) 'अमुक' के स्थान में गुरु का और अमुकी के स्थान में गुरु-पत्नी का नाम ले।

भवपाशविनाशाय ज्ञानदृष्टिप्रदर्शिने ।
नमः सद्गुरवे तुभ्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ॥
नराकृतिपरब्रह्मरूपायाज्ञानहारिणे ।
कुलधर्मप्रकाशाय तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥*

इसके बाद साधक अपने इष्ट-देवता का ध्यान करे। पूजा-द्रव्यों से उसकी भी मानसिक पूजा करे। यथा—'अमुकी देवी श्री पादुकां पूजयामि हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः—आदि मंत्र पढ़कर गुरु की मानसिक पूजा की भाँति इष्टदेवता को पुष्प, गन्ध धूप, दीप और नैवेद्य अर्पित करे। फिर मूल-मन्त्र का यथाशक्ति जपकर जप-फल को इष्ट-देवता के बायें हाथ में समर्पित कर दे। और तब मूल-मन्त्र से उसे मानसिक प्रणाम करे। यथा—

नमः सर्वस्वरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः ।
आद्यायै 'अमुकायै' ते कर्त्र्यै हर्त्र्यै नमो नमः ॥ †

---

* अर्थात् हे सद्गुरु, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम भवपाश का विनाश करते हो और ज्ञान-दृष्टि प्रदान करते हो। तुम भोग और मोक्ष प्रदान करते हो। तुम अज्ञान के दूर करनेवाले हो, तुम कुल-धर्म का प्रकाश करनेवाले हो। तुम मनुष्यरूप में परब्रह्म हो।

† अर्थात् सब स्वरूपवाली को नमस्कार है। विश्व को धारण करनेवाली को नमस्कार है। (यहाँ देवता का नाम ले) हे देवी, तू कर्त्री और हर्त्री दोनों है। तुझे बारबार नमस्कार है।

इस प्रातःकृत्य को करके साधक बिछौने से उठे और भूमि पर पहले अपना बायाँ पैर रक्खे और तब घर से बाहर निकले। शौच आदि कर्मों से निवृत्त होकर और दतून आदि कर वह स्नान आदि कर्म करने में प्रवृत्त हो।

(२) स्नान-विधि*

आचमन कर साधक जलाशय में प्रवेश करे। उसमें नाभि-पर्यन्त धँसकर वह पहली डुबकी लगावे। फिर सीधा खड़ा हो कर देह को मले। उसके बाद आगे के मंत्रों से वह तीन बार आचमन करे। यथा-- १ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, २ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ३ शिवतत्त्वाय स्वाहा।† ये आचमन कर चुकने के पश्चात् वह दो बार ऊपर के ओंठ से आचमन करे। फिर अपने आगे जल में कुलयन्त्र▽अर्थात् त्रिकोण बनाकर उसके बीच में मूल-मन्त्र लिखे और उसके ऊपर १२ बार मूलमंत्र का जप करे। फिर कुलयन्त्र के भीतर के जल को तेजोरूप ध्यानकर उसे तीन बार

*स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम्।
तस्मात् स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्द्धनम्॥
स्नानं द्विविधं प्रोक्तं मज्जनं गात्रमार्ज्जनम्।
मंत्रजलादिभिः स्नानमुत्तमं परिकीर्तितम्॥ यामले।

†इन मंत्रों से साधक आत्मा, ब्रह्मविद्या और शिव को स्नान कराता है।

अञ्जलि-द्वारा सूर्य को अर्पित करे। इसके बाद यन्त्रस्थ जल को अपने ऊपर तीन बार छिड़के। फिर अपने शरीर के सप्त द्वार-२ आँखें, २ कान, २ नथुने और मुँह दोनों हाथों की अँगुलियों से बन्दकर देवता के प्रसन्नार्थ तीन बार डुबकी लगावे।

फिर जल से बाहर निकलकर वस्त्र आदि धारण करे।✻ धोती पहन और कन्धे पर अँगौछा रख यथास्थान आसन पर बैठकर गायत्री से शिखा में गाँठ दे और तब माथे में भस्म का त्रिपुण्ड और सिन्दूर की बिन्दी लगावे। शरीर के दूसरे अङ्गों में भी नियमानुसार भस्म लगावे। इसके बाद वैदिक एवं तांत्रिक सन्ध्या-वन्दन करे।

(३) तान्त्रिक सन्ध्या-वन्दन

आगे के मंत्रों से पहले तीन बार आचमन करे—

(१) आत्मतत्त्वाय स्वाहा, (२) विद्यातत्त्वाय स्वाहा, (३) शिवतत्त्वाय स्वाहा।

आचमन करने के बाद साधक पूजा के जल में तीर्थों का आवाहन करे। आवाहन अंकुशमुद्रा† से आगे का मन्त्र पढ़कर करे।

✻ घर में स्नान करने पर तांत्रिक स्नान इसी प्रकार घड़े के जल को अभिमंत्रित करके किया जाता है।

† मुद्राओं के सम्बन्ध में 'उत्तरार्द्ध' में मुद्रा-लक्षण देखो।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती ।
नर्म्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥*

तीर्थावाहन के बाद उस जल के ऊपर बारह बार मूल-मन्त्र का जप करे। इसके बाद उस पूजा-जल को मूल-मंत्र से तीन बार भूमि पर गिरावे। अनामिका और मध्यमा को एक में मिला ले। इन्हीं के ऊपर से उपर्युक्त जल भूमि पर छोड़े। फिर मूल-मन्त्र पढ़ता हुआ उसी जल को सात बार अपने मस्तक पर छिड़के। इसके बाद थोड़ा जल अपने बायें हाथ की हथेली में लेकर उसे दाहने हाथ की हथेली से ढँक दे। फिर 'हं यं वं रं लं'[1]—इन पाँच वीजों को मन में चार बार जपकर बायीं हथेली के उस जल को दाहनी हथेली में कर ले। इसके बाद उस जल को अपने मन में तेजोमय समझता हुआ साधक उसे अपने बायें नथुने से इडा-नाडी के द्वारा ऊपर को खींचे और दाहने नथुने की पिंगला-नाडी से उसे फिर उसी दाहनी हथेली में गिरा ले। वास्तव में जल ऊपर खींचा या नीचे गिराया नहीं जाता, किन्तु ऐसा होना समझ भर लिया जाता है। इस कल्पित क्रिया से साधक का शरीर शुद्ध हो जाता है।

---

* अर्थात् हे गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी इस जल में आओ।

१ हं ईशानवीज, यं वायुवीज, वं वरुणवीज, रं अग्निवीज, लं इन्द्रवीज है।

ऊपर की क्रिया से शरीर को शुद्धकर साधक उस जल को अपने बायें हाथ की हथेली पर पटक सा दे। वह बायें हाथ की हथेली को कल्पना से वज्र-शिला मान ले और उस पर उस जल को फेंककर मानो उसने शरीर के अशुद्धता-रूपी पाप-पुरुष को लाकर पटक दिया है। इसके बाद वह 'फट'[२] मंत्र से अपने हाथ धो डाले। फिर आचमन कर आगे के मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य दे। यथा—ॐ ह्रीं हंसः घ्रिणि सूर्य इदम अर्घ्यं तुभ्यं स्वाहा।[३]

अर्घ्य-दान के बाद साधक प्रातः, मध्याह्न[४] और सायंकाल[५]

२ अस्त्रमंत्र है।

३ अर्थात् हे उष्णता से पूर्ण, प्रकाशमान, तेजपूर्ण सूर्य, मैं तुमको यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ।

४ मध्याह्ने तां स्वर्णवर्णां वैष्णवीञ्च चतुर्भुजाम्।
शंखचक्रगदापद्मधारिणीं गरुडासनाम्।
पीनोत्तुङ्गकुचद्वन्द्वां वनमालाविभूषिताम्
युवतीं सततं ध्यायेन्मध्ये मार्तण्डमण्डले॥

अर्थात् मध्याह्न-काल में सूर्य-मण्डल में स्वर्णवर्णा, चतुर्भुजा-शंख-चक्र-गदा-पद्मधारिणी पीनोत्तुंग पयोधरा बनमालाधारिणी गरुडासना युवा वैष्णवी का ध्यान करे।

५ सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद् यतिः।
शुक्लां शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम्॥
त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलं च नृकरोटिकाम्।

के ध्यानों के अनुसार मन्त्र-गायत्री का अपने अपने काल में ध्यान करे। प्रातःकाल के सन्ध्या-बन्दन में वह आगे के मन्त्र से ध्यान करे। यथा--

प्रातर्ब्राह्मीं रक्तवर्णां द्विभुजाञ्च कुमारिकाम्।
कमण्डलुं तीर्थपूर्णमच्छमालां च बिभ्रतीम्॥
कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढ़ां शुचिस्मिताम्॥[1]

फिर गायत्री देवी को अञ्जलि में तीन बार अर्घ्य देकर वह मन्त्र-गायत्री का दश या शत बार यथा शक्ति जप करे। फिर इष्ट-देवता को 'ह्रीं मूल-मन्त्र※ सर्वभूत-निवासिन्यै सर्वस्वरूपायै सायुधायै सावरणायै परात्परायै अमुक-देव्यै† ते इदं अर्घ्यं स्वाहा'‡

बिभ्रतीं करपद्मैश्च वृद्धां गलितयौवनाम्॥

अर्थात् सायंकाल में श्वेतवर्ण, श्वेतवस्त्रा, त्रिनेत्रा, अपने करकमलों में पाश, शूल, बर्छी, कपाल लिये, बैल पर आसीन वर देनेवाली गत-यौवना वृद्धा का ध्यान करे।

१ अर्थात् प्रातःकाल दो हाथोंवाली कुमारी, पवित्र जल से पूर्ण कमण्डलु लिये, स्वच्छ माला पहने, काले मृग का चर्म धारण किये, हंस पर आसीन, पवित्र मुस्कराहट से युक्त रक्तवर्ण ब्राह्मी का ध्यान करे।

※मूल-मन्त्र का जहाँ जहाँ उल्लेख है, वहाँ साधक को अपने इष्ट देवता के मन्त्र को शामिल करना चाहिए।

†यहाँ इष्टदेवता का नाम ले।

‡अर्थात् सब भूतों में निवास करनेवाली सर्वस्वरूपवाली परात्पर

यह मन्त्र पढ़कर तीन बार जल-दान दे। इसके बाद यथाशक्ति मूल-मन्त्र का जप करे। फिर जप-फल को देवी की बायीं हथेली में अर्पित कर उसको नमस्कार करे।

(४) तान्त्रिक तर्पण

इसके बाद गुरुओं को देवताओं और पितरों को जल दान दे।

तर्पण करने के लिए जल को 'वं' वीज से धेनु-मुद्रा दिखला कर अमृतमय करे। फिर वह पहले गुरुओं को जलदान करे। यथा—अमुक गुरुस्तृप्यताम, परमगुरुस्तृप्यताम्, परापरगुरुस्तृप्यताम, परमेष्ठी गुरुस्तृप्यताम्—ये मन्त्र पढ़कर प्रत्येक गुरु का नाम लेकर प्रत्येक को तीन तीन बार जल-दान करे।

इसके बाद 'शिव-गोत्रः अमुक पिता ईश्वरभैरवस्तृप्यताम्' से पिता को, 'शिवगोत्रः अमुक पितामह सदाशिव भैरवस्तृप्यताम' से पितामह को और 'शिवगोत्रः अमुक प्रपितामह शिवभैरवस्तृप्यताम' से प्रपितामह को तीन तीन बार जलदान करे। तब 'माता अमुकी बलविकरणी भैरवी तृप्यताम' से माता को, 'पितामही अमुकी बलप्रमथनी भैरवी तृप्यताम्' से पितामही को, 'प्रपितामही अमुकी सर्वभूतदमनी भैरवी तृप्यताम्' से प्रपितामही को तीन तीन बार जल प्रदान करे। इसी प्रकार मातामह,

---

अमुक देवी को उसके आयुधों और अनुचरों के सहित यह अर्घ्य अर्पित है।

प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह एवं मातामही, प्रमातामही और वृद्ध प्रमातामही आदि को जल-दान करे।

इस प्रकार सन्ध्या-वन्दन कर साधक जलाशय को नमस्कार कर उससे पूजा के लिए घट में जल लेकर घर को लौटे मार्ग में वह इष्ट-देवता का भक्तिपूर्वक स्मरण करता हुआ स्तोत्र-पाठ करता चले।

(५) नित्य का अर्चन*

सामान्य अर्घ्य-पात्र—घर पहुँच कर साधक हाथ-पैर जल से धोकर पूजा-गृह के द्वार पर जाय। वहाँ वह पहले सामान्य-अर्घ्य-पात्र की स्थापना करे। वह अपने दाहने स्वच्छ स्थान में पहले एक त्रिकोण बनावे। फिर त्रिकोण के बाहर एक वृत्त और तब चतुष्कोण बनावे। इस प्रकार  मण्डल की रचना कर साधक उस मंडल पर 'ॐ आधारशक्तये नमः'—इस मन्त्र से आधार-शक्ति का पूजन करे। तब 'फट्' मन्त्र से आधार और पात्र को जल से धोकर

---

* अगर साधक घर में ही स्नान करे और पूजा-गृह न हो तो वह किसी एकान्त शुद्ध स्थान में सन्ध्योपासन आदि कर चुकने के बाद इष्ट-देवता का अर्चन करे। वह वहीं सामान्य-अर्घ्य-पात्र की स्थापना करके आसन-शोधन, भूतापसर्पण आदि कर्म प्रारम्भ करे। द्वार-देवताओं की पूजा तब नहीं करे।

आधार-सहित उसी मण्डल पर स्थापित करे। इसके बाद 'ह्रीं' मन्त्र को मन में जपता हुआ उस पात्र में जल भरे। फिर उस जल में—'गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं-कुरु'—यह मंत्र पढ़ कर अंकुश-मुद्रा से तीर्थों का आवाहन करे। इसके उपरान्त उस जल में पुष्प और गन्ध छोड़-कर 'रं अग्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' से आधार में अग्नि-मण्डल की, 'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' से पात्र में सूर्य की और 'पं चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से जल में चन्द्र की पूजा करे। फिर उस जल के ऊपर ह्रीं वीज का दस बार जप करे और धेनु तथा योनि मुद्रायें बनाकर दिखावे। इस विधि से सामान्यार्घ्य-पात्र का स्थापन करे। इसी पात्र के जल से आगे की पूजा करनी चाहिए।

इसके बाद साधक सामान्यार्घ्यपात्र के जल और पुष्प से पूजा-गृह के द्वार पर द्वार-देवताओं का पूजन करे। यथा—'धात्रे नमः' 'विधात्रे नमः' से अपने दाहने, 'गं गङ्गायै नमः' 'यं यमुनायै नमः' से अपने बायें, 'द्वारश्रियै नमः' 'देहल्यै नमः' से ऊपर और 'वास्तुपुरुषाय नमः' से नीचे पूजन करे। फिर द्वार के बायें भाग को धीरे से स्पर्श कर साधक अपना बायाँ पैर द्वार के भीतर रखकर इष्ट-देवता का स्मरण करता हुआ पूजा-गृह में प्रवेश करे। वहाँ दक्षिण-पश्चिम के कोने में गन्ध, पुष्प आदि से 'ॐ वास्तुदेवताय नमः' से अधिष्ठातृ देवता

की और 'ॐ ब्रह्मणे नमः'—से ब्रह्मा की पूजा कर वह सामान्यार्घ्य के जल को छिड़ककर पूजा-स्थान को पवित्र करे। फिर दिव्य दृष्टि से अर्थात् एकटक देखकर 'फट्' मन्त्र से फटकार कर दिव्य विघ्नों और अन्तरिक्ष में स्थित सभी विघ्नों का निवारण करे। इसके बाद पृथ्वी पर अपनी एड़ी से तीन बार धीरे से ठोकर देकर भूगत सभी विघ्नों का भी वारण करे और तब चन्दन, अगर, कस्तूरी और कर्पूर जला कर पूजा-स्थान को सुगन्ध से परिपूर्ण करे।

आसन-शोधन—अपने बैठने के स्थान में समचतुष्कोण मण्डल बनाकर उसके बीच में एक त्रिकोण बनावे। त्रिकोण में 'कामरूपाय नमः' से कामरूप-पीठ की पूजा करे। फिर उस पर आसन बिछाकर उस पर 'क्लीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' से आधार-शक्ति की पूजा करे। इसके बाद साधक उस आसन*

*काले मृगचर्म के आसन से मुक्ति, व्याघ्रचर्म के आसन से मुक्ति और सम्पदा दोनों साधक को प्राप्त होती हैं। मनोकामना की पूर्ति के लिए ऊनी आसन श्रेष्ठ है—लाल ऊनी आसन तो विशेष रूप से इच्छापूर्ति की साधना में उपयुक्त माना गया है। मन्त्र की सिद्धि में कुश का, और त्रिपुरसुन्दरी की उपासना में लाल ऊनी आसन प्रशस्त है। आसन २ हाथ से लम्बा, डेढ़ हाथ से चौड़ा और ३ इंच से अधिक ऊँचा न होना चाहिए। गृहस्थ को काले मृगचर्म के आसन का व्यवहार नहीं करना चाहिए। मिट्टी के आसन से दुःख और

पर वीरासन या पद्मासन से प्रसन्न चित्त होकर बैठे॰ । वह उत्तर या पूर्व† को मुख करके बैठे और विजाया का संशोधन करे।

विजया-ग्रहण—साधक विजया के पात्र को आधार के ऊपर अपने सम्मुख स्थापित करे। फिर उसे आगे के मन्त्र से शुद्ध करे—

लकड़ी के आसन से दुर्भाग्य प्राप्त होता है। आम, नीम और कदम्ब की लकड़ी के आसनों से तो विशेष रूप से परिवार का नाश होता है। बाँस, ईंट, मिट्टी, तृण और टहनियों के बने आसन दारिद्र, रोग और दुख का कारण होते हैं। गन्धर्व तन्त्र ७ पटल

॰जप, पूजा आदि पद्म, स्वस्तिक या वीर आसन से बैठ कर करना चाहिए, अन्यथा वे फलप्रद नहीं होते। राघवभट्ट

दोनों पैर दोनों जाँघों पर रखना चाहिए। यही पद्मासन है।

गौतमी तन्त्र ८ अध्याय

योगी को सीधी पीठ पैरों को एक दूसरे पर करके बैठना चाहिए। यह स्वस्तिक आसन कहलाता है।

योगी को सीधी पीठ एक पैर ज़मीन पर रख और दूसरा उस पैर की जाँघ पर रख के बैठना चाहिए। यह वीरासन है।

सम्मोहन तंत्र पटल २

†देवताओं की पूजा दिन में पूर्वाभिमुख और रात में उत्तराभिमुख करनी चाहिए। परन्तु देवी और शिव की पूजा सदा उत्तराभिमुख करनी चाहिए।

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं आकर्षय आकर्षय सिद्धिं देहि अमुक इष्टदेवता मे वशमानय स्वाहा[१]। इसके बाद मूल-मन्त्र को सात बार जप कर विजया के ऊपर धेनु, योनि, आवाहिनी, स्थापिनी, संनिधापिनी, संनिरोधिनी और सम्मुखीकरिणी मुद्रायें दिखावे। फिर सहस्र-कमल-दल में स्थित गुरुदेव को 'ऐं अमुकआनन्दनाथ श्री गुरुपादुकां तर्पयामि नमः' से तत्त्व-मुद्रा-द्वारा विजया को मस्तक से स्पर्श कर उसे तीन बार गुरु को अर्पित करे। फिर 'मूलमन्त्र अमुक इष्टदेवतां तर्पयामि स्वाहा' से उसे तत्त्वमुद्रा-द्वारा हृदय से स्पर्श कर तीन बार इष्ट-देवता को अर्पित करे। इसके बाद 'ऐं वद वद वाग्वादिनी मम जिह्वाग्रे स्थिरी भव सर्वसत्त्वंवशंकरि स्वाहा'[२]—से कुण्डलिनी-शक्ति[३] के मुख में कल्पना-द्वारा अर्पित सा करता हुआ साधक विजया का पान कर जाय।

अर्चन-कर्म—विजया-ग्रहण के बाद साधक पहले गुरुदेव को प्रणाम करे। यथा—वह अपने दोनों हाथ जोड़ कर अपने बायें

१—अर्थात् हे अमृता, हे अमृत से उत्पन्न होनेवाली, हे अमृत की वर्षा करनेवाली, तू अमृत का आकर्षण कर, सिद्धि प्रदान कर, अमुक देवता को मेरे वश में ले आ।

२—अर्थात् हे सरस्वती, हे सर्वसत्वों को वश में रखनेवाली, तू मुझे अनुप्राणित कर और मेरी जिह्वा के अग्र भाग में सदा स्थिर रह।

३—उत्तरार्द्ध में 'षट्-चक्र-प्रकरण' देखो।

कान पर रखकर गुरुदेव को प्रणाम करे। उसी तरह दोनों हाथ दाहने कान पर रखकर गणेश को प्रणाम करे। और तब उसी प्रकार माथे के बीच में रखकर हृदय में इष्ट-देवता का ध्यान करता हुआ उसको प्रणाम करे। तदनन्तर अपने दाहने आवश्यक पूजा-सामग्री और अपने बायें मद्य आदि पदार्थ स्थापित करके पूजा का प्रारम्भ करे। अगर पूजा-गृह के द्वार पर सामान्य अर्घ्य-पात्र की स्थापना न हुई हो तो साधक पहले पूर्वोक्त विधि के अनुसार सामान्य अर्घ्य-पात्र की स्थापना करे।

मूल-मन्त्र के साथ 'फट' जोड़कर साधक सारी पूजा-सामग्री पर सामान्य-अर्घ्य-पात्र का जल छिड़ककर उसे पवित्र करे। फिर वह अपने को और पूजा-सामग्री को रं बीज का उच्चारण कर जल के घेरे से घेर दे और इस प्रकार अपने को अग्नि की दीवार से घिरा हुआ समझे। फिर वह चन्दन लगा हुआ एक फूल हाथ में लेकर उसे 'फट' मन्त्र से दोनों हाथों से मल कर फेंक दे।

उक्त क्रिया से अपने हाथ शुद्ध कर साधक दिग्बन्धन करे। यथा—दाहने हाथ की पहली और दूसरी अँगुली से बायें हाथ की हथेली पर 'फट्'-मन्त्र से तीन बार शब्द करे। इस क्रिया से दिग्बन्धन होता है और तब अर्चना में किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता। इसके बाद भूत-शुद्धि करे।

भूत-शुद्धि—साधक आगे के श्रुति-वचनों को पढ़ता हुआ ध्यानपूर्वक भूत-शुद्धि* करे। यथा—

स्वाङ्के निधाय च करावुत्तानौ साधकोत्तमः।
मनो निवेश्य मूले च हुङ्कारेणैव कुण्डलीम ॥ १ ॥
उत्थाप्य हंसमंत्रेण पृथिव्या सहितान्तु ताम।
स्वाधिष्ठानं समानीय तत्त्वं तत्त्वे नियोजयेत ॥ २ ॥
गन्धादिघ्राणसंयुक्तां पृथिवीमप्सु संहरेत।
रसादिजिह्वया सार्द्धं जलमग्नौ विलापयेत ॥ ३ ॥
रूपादिचक्षुषा सार्द्धमग्निं वायौ विलाप्य च।
स्पर्शादि त्वग्युतं वायुमाकाशे प्रविलापयेत ॥ ४ ॥
अहङ्कारे हरेद् व्योम सशब्दं तन्महत्यपि।
महत्तत्त्वञ्च प्रकृतौ तां ब्रह्मणि विलापयेत ॥ ५ ॥
इत्थं विलाप्य मतिमान वामकुक्षौ विचिन्तयेत।
पुरुषं कृष्णवर्णञ्च रक्तश्मश्रुविलोचनम ॥ ६ ॥
रक्तचर्मधरं क्रुद्धमङ्गुष्ठपरिमाणकम।
सर्वपापस्वरूपञ्च सर्वदाधोमुखस्थितम ॥ ७ ॥

*भूतशुद्धिं विना कर्म जपहोमार्च्चनादिकम्।
भवेत्तु निष्फलं सर्वप्रकारेणाप्यनुष्ठितम् ॥ मत्स्यसूक्त १९ पटल

१—भूत-शुद्धि, ऋषि-न्यास, पीठन्यास, षडङ्गन्यास, करन्यास, मातृका-न्यास और विद्यान्यास करने से साधक देव-भाव को प्राप्त होता है। अतएव इन न्यासों को नित्य करना चाहिए। गन्धर्व-तन्त्र

ततस्तु वामनासायां यं वीजं धूम्रवर्णकम ।
सञ्चिन्त्य पूरयेत्तेन वायुं षोडशमात्रया ॥ ८ ॥
तेन पापात्मकं देहं शोषयेत साधकाग्रणीः ।
नाभौ रं रक्तवर्णञ्च ध्यात्वा तज्जातवह्निना ॥ ९ ॥

अर्थात् साधक अपनी गोद में ऊपर को हथेली किये हुए दोनों हाथ रक्खे। फिर वह मूलाधार-चक्र (उत्तरार्द्ध में षट्चक्रप्रकरण देखो) का ध्यानकर 'हुं' वीज से कुण्डलिनी को जगावे। इसके बाद पृथ्वी-तत्त्व के सहित उसे 'हंस' मन्त्र के द्वारा स्वाधिष्ठान-चक्र में ले आवे। इस समय वायु सुषुम्ना-नाडी के बीच तक पहुँचाया जाता है। स्वाधिष्ठान-चक्र में कुण्डलिनी के लाने पर एक तत्त्व दूसरे तत्त्व के द्वारा एक दूसरे में लय होते हैं। अतएव साधक पृथ्वी-तत्त्व को गन्ध और घ्राण-इन्द्रिय के सहित जल-तत्त्व में लय करे, जल-तत्त्व को स्वादु और स्वादु-इन्द्रिय के सहित अग्नितत्त्व में लय करे, अग्नितत्त्व को दृष्टि, स्वरूप और नेत्र-इन्द्रिय के सहित वायु-तत्त्व में लय करे, वायु-तत्त्व को स्पर्श तथा स्पर्शेन्द्रिय के सहित आकाश-तत्त्व में लय करे, आकाश-तत्त्व और शब्द-गुण को अहङ्कार में लय करे, अहङ्कार को महत् तत्त्व में, महत् तत्त्व को प्रकृति में और प्रकृति को ब्रह्म में लय करे।

इस प्रकार तत्त्वों को लय करने के बाद साधक अपने मन में यह कल्पना करे कि उदर के भीतर बायें पार्श्व में अँगूठे की बराबर ऊँचा एक काला पुरुष स्थित है। वह क्रुद्ध है, उसकी आँखें लाल हैं और उसके डाढी भी है, और वह अपने हाथों में ढाल-तलवार

चतु:षष्ट्या कुम्भकेन दहेत् पापरतान्तनूम् ।
ललाटे वारुणं वीज शुक्लवर्णं विचिन्त्य च ॥ १० ॥
द्वात्रिंशता रेचकेन प्लावयेदमृताम्भसा ।
आपादशीर्षपर्यन्तमाप्लाव्य तदनन्तरम् ॥ ११ ॥

लिये हुए है और अपना मुँह नीचे को किये हुए है। वह साक्षात् पाप-मूर्ति है। इस प्रकार पाप-पुरुष का ध्यानकर साधक अपने बायें नथुने में धूम्रवर्ण के 'यं' (वायु) वीज की कल्पना करे। फिर इस वीज को जपता हुआ वह वायु को खींचे। यह क्रिया करते समय वह यं वीज को सोलह बार जपे। इस क्रिया से वह पूर्वोक्त पापात्मक पुरुष की देह शुद्ध कर दे। तब वह रक्तवर्ण 'रं' (अग्नि) वीज का नाभि में ध्यान करे और उसे जपता हुआ कुम्भक प्रणायाम करे। इस अवसर पर वह रं वीज का जप चौंसठ बार करे। इस वीज से उत्पन्न अग्नि-द्वारा वह सारी पापभावनाओं के सहित उस पाप-पुरुष की देह को दग्ध कर दे। इसके बाद वह अपने मस्तक में श्वेतवर्ण 'वं' (वरुण) वीज का ध्यान करे और उसे जपता हुआ रेचक प्राणायाम करे। इस बार वं वीज को बत्तीस बार जपना चाहिए और उक्त वीज से अमृत-सदृश बहते हुए जल से कल्पना-द्वारा उक्त दग्ध की हुई देह को स्नान कराना चाहिए।

इस क्रिया के बाद साधक पूर्वोक्त अमृत-सदृश बहते हुए जल से पैर से सिर तक अपनी सारी देह को स्नान करावे और यह कल्पना करे कि उसका शरीर देवतामय (देवता बनकर ही देवता की पूजा करनी चाहिए। गन्धर्व-तन्त्र में लिखा है—केवल देव को ही देव की पूजा

उत्पन्नं भावयेद्देहं नवीनं देवतामयं।
पृथ्वीवीजं पीतवर्णं मूलाधारे विचिन्तयन ॥ १२ ॥
तेन दिव्यावलोकेन दृढ़ीकुर्यान्निजान्तनूम् ॥ १३ ॥

इष्टदेवता का जीव-न्यास—इस प्रकार भूत-शुद्धि करके साधक जीवन्यास की क्रिया करे। वह अपने हृदय के ऊपर अपना दाहना हाथ रख कर आगे का मन्त्र पढ़े—ॐ ह्रीं क्रों हंसः सोहं।❀

इस मन्त्र से वह अपने शरीर में इष्टदेवता की आत्मा को आविष्ट करे, अर्थात् उसके प्राणों का निधापन करे। अब साधक आगे के क्रम से मातृका-न्यास करे।

करनी चाहिए। अदेव को देव की पूजा नहीं करनी चाहिए।) हो गया है। फिर वह मूलाधार-चक्रमें पीत वर्ण 'लं' (पृथ्वी) वीज का ध्यान करे और इस वीज को जपता हुआ वह अपने देवतामय शरीर को दिव्य दृष्टि से देखकर दृढ़ करे।

❀अपर प्राण-प्रतिष्ठा मंत्र

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हौं हंसः अमुक देवतायाः (इस जगह पर साधक अपने इष्ट-देवता का नाम जोड़ ले, जैसे काली का काल्याः) प्राणा इह प्राणाः इह जीव इहस्थितः सर्वेन्द्रियाणि इहस्थितानि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

मातृका-न्यास—पहले साधक मातृका-प्राणायाम करे। यथा—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः से पूरक, कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं से कुम्भक और यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं से रेचक करे।

प्राणायाम के बाद साधक मातृका-न्यास करे। पहले वह विनियोग करे। यथा—

अस्याः श्री मातृकासरस्वती मन्त्रस्य मातृकायाः ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः मातृका सरस्वती देवता हलोबीजानि स्वराः शक्तयः व्यक्तयः विसर्गः कीलकानि (यहाँ साधक अपने देवता का नाम उल्लेख करे) शरीर शुद्धि पुरःसरम धर्मार्थ काममोक्षार्थे लिपि-न्यासे विनियोगः ❀।

विनियोग के बाद ऋषि आदि का न्यास करे। यथा—

ब्रह्मणे ऋषयेनमः सिर में, गायत्री छन्दसे नमः मुख में, श्री मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः हृदय में, हलभ्योबीजेभ्योनमः गुह्य में, स्वरेभ्यः शक्तिभ्योनमः पैरों में, व्यक्तिभ्यः कीलकेभ्यो नमः सर्वाङ्ग में स्पर्श करे। लिपिन्यासे विनियोगः अञ्जलि बाँध कर कहे।

❀ **अर्थात् इस मात्रिका मंत्र के ऋषि ब्रह्मा हैं, इसका छंद गायत्री है, देवता मात्रिका अर्थात् सरस्वती है, व्यञ्जन बीज हैं, स्वर शक्तियाँ है, विसर्ग कीलक अर्थात् समाप्ति है। शरीर-शुद्धि के सहित धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के लिए इसका विनियोग करता हूँ।**

इसके बाद मातृका का करन्यास करे। यथा—

अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (दोनों अँगूठों में), इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा (दोनों तर्जनी अँगुलियों में,) उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट् (दोनों बीच की अँगुलियों में), ऍं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुँ (दोनों अनामिकाओं में), ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट् (दोनों कनिष्ठाओं में), अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः करतल करपृष्ठाभ्यां फट् (दोनों हाथों के ऊपर-नीचे स्पर्श करे)।

इसके बाद मातृका का षडङ्गन्यास करे यथा—अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः (हृदय में), इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसि स्वाहा (सिर में), उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट् (शिखा में), ऍं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुँ (दोनों कन्धों में), ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट् (तीनों आँखों में), अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं अः अस्त्रायफट् (फटकार करे)।

अब मातृका सरस्वती का षट्चक्रों में अन्तर्मातृका-न्यास करे। पहले साधक अन्तर्मातृका का ध्यान करे। यथा—

सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्ण विभूषिते।
अकथादि त्रिरेखात्म हलक्षत्रय भूषिते॥
तन्मध्ये परविन्दुश्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।
एवं समाहितमना ध्यायेन्न्यासोऽयमान्तरः* ॥

---

* अर्थात् बर्फ के समान सफेद उनचासों वर्णों से विभूषित,

अब वह षट्चक्रों में आगे के क्रम से न्यास करे—

भौहों के बीच के दो दलवाले कमल के चक्र में—हं नमः, क्षं नमः। कंठ के सोलह दलवाले कमल के चक्र में—अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, ऌं नमः, ॡं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः। हृदय के बारह दलवाले कमल के चक्र में—कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः। नाभि के दस दलवाले कमल के चक्र में—डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः। शिश्नमूल के छः दलवाले कमल के चक्र में—बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः। मूलाधार के चार दलवाले कमल के चक्र में—वं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः।

इस प्रकार साधक उपर्युक्त चक्रों के कमलों के प्रत्येक दल में मातृकाओं का न्यास करे।

अन्तर्मातृका-न्यास कर चुकने के बाद साधक बहिर्मातृका-न्यास करे। वह पहले आगे के पद्य के अनुसार मातृका-सरस्वती का ध्यान करे—

अकथ आदि तथा हलक्ष से युक्त त्रिकोण से अंकित सहस्रदलकमल-चक्र के बीच में उस परम विन्दु का ध्यान करे जो सृष्टि, स्थिति और लय का कारण है।

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटंकं विद्यांकरैरविरतं दधतीं त्रिनेत्रां।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां वर्णेश्वरीं प्रणमतस्तनभारनम्राम॥१

इस प्रकार ध्यान करने के बाद बहिर्मातृका[२] का न्यास आगे के संहार-क्रम से करे--

अनामिका और मध्यमा से ललाट में--क्षं नमः। अनामिका, तर्जनी और मध्यमा से मुख-विवर में-लं नमः। अनामिका और अँगूठे से दाहने नेत्र में-हं नमः। अनामिका और अँगूठे से बायें

१अर्थात् जो अपने चारों हाथों में रुद्राक्ष-माला हिरन का बच्चा, मृदंग और पुस्तक लिये हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, सिर में अर्द्धचन्द्र विराजमान है, जो अरविन्दवासिनी हैं, उन्हीं वर्णेश्वरी स्तन के भार से नत देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

२ बहिर्मातृका-न्यास के तीन क्रम हैं। गृहस्थ पहले संहार-क्रम, उसके बाद सृष्टिक्रम और तब स्थितिक्रम का न्यास करता है। प्रायः गृहस्थ साधक एक ही क्रम का न्यास करते हैं। अतएव यहाँ संहारक्रम का न्यास दिया गया है। शेष दोनों न्यास इस प्रकार हैं--

(१) सृष्टिक्रम

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोपन्मध्यवक्षः स्थलां।
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम्॥
मुद्रामक्षगुणां सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै--
र्विभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाक्देवतामाश्रये॥
इति ध्यात्वा अकारादि क्षकारान्ता ललाटादिषु विन्यसेत्

नेत्र में- सं नमः। अँगूठे की पीठ से दाहने कान में-षं नमः और बायें कान में-शं नमः। कनिष्ठा और अँगूठे से दाहनी नासिका में-व नमः और बाईं नासिका में लं नमः। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से दाहने गाल में-रं नमः और बायें गाल में यं नमः। मध्यमा से ओंठ में-मं नमः और अधर में-भ नमः, अनामिका से ऊपर की दन्त-पंक्ति में—बं नमः और नीचे की दंत-पंक्ति में—फं नमः। मध्यमा से ब्रह्मरन्ध्र में—पं नमः। अनामिका से मुख-विवर में—न नमः। मूँठी बाँधकर मध्यमा से दाहने हाथ की जड़ में—धं नमः,दाहनी टेहुनी में—दं नमः, दाहिनी कलाई में—थं नमः, दाहनी अँगुलियों की जड़ में—तं नमः, दाहनी अँगुलियों के अग्रभाग में—णं नमः और बायें हाथ की जड़ में—ढं नमः। बाईं टेहुनी में—डं नमः, बाईं कलाई में—ठं नमः, बाईं अँगुलियों की जड़ में—टं नमः, बाईं अँगुलियों के

(२) स्थितिक्रमः।

ऋष्यादि पूर्ववत् विधाय ध्यायेत्—

सिन्दूरकान्तिममिताभरणां त्रिनेत्रां,

विद्याक्ष सूत्रमृगपोतवरान् दधानाम्।

पार्श्वे स्थितां भगवतीमपि काञ्चनाभाम्,

ध्यायेत् कराब्जधृत पुस्तकवर्णमालाम्।

उं नमः दक्षगुल्फे इत्यादि। क्षं नमः हृदादिमुखे विन्यस्य पुनः अं नमः ललाटे से ठं नमः दक्षजानुनि तक।

अग्रभाग में ञं नमः। ऐसे ही दाहने पैर की जड़ में—झं नमः, गाँठ में—जं नमः, गुल्फ में—छं नमः, दाहने पैर की अँगुलियों की जड़ में—चं नमः, दाहने पैर की अँगुलियों के सिरे में—ङं नमः और बायें पैर की जड़ में—घं नमः, बाईं गाँठ में गं नमः बाईं गुल्फ में—खं नमः, बायें पैर की अँगुलियों की जड़ में—कं नमः, बायें पैर की अँगुलियों के अग्रभाग में—अः नमः। मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से दाहने पार्श्व में—अं नमः और बायें पार्श्व में औं नमः। ऐसे ही पीठ में ओं नमः। अंगुष्ठ और कनिष्ठा से नाभि में—ऐं नमः। पाँचों अँगुलियों से जठर में—एं नमः। हथेली से हृदय में लृं त्वगात्मने नमः। कनिष्ठा और अँगूठे से दाहने कंधे में—लृं असृगात्मने नमः और ककुद में—ॠं मेदात्मने नमः। ऐसे ही बायें कंधे में—ऋं मांसात्मने नमः। हथेली से हृदय से लगाकर दाहने हाथ तक—ऊँ अस्थ्यात्मने नमः, हृदय से बायें हाथ तक—उं मज्जात्मने नमः। ऐसे ही हृदय से दाहने पैर तक—ईं शुक्रात्मने नमः और हृदय से बायें पैर तक—इं प्राणात्मने नमः। ऐसे ही हृदय से उदर तक—आं जीवात्मने नमः और हृदय से मुख तक—अं परमात्मने नमः।

मानसिक पूजा—इस प्रकार मातृका-न्यास करने के बाद साधक इष्ट-देवता के मूल-मन्त्र-सम्बन्धी अन्यान्य ऋषि, कर षडंग आदि आवश्यक न्यास यथाशक्ति करे। तदनन्तर वह

इष्ट-देवता की मानसिक आनन्ददायिनी पूजा करने के लिए अनाहत-चक्र के नीचे स्थित ऊपर के मुँहवाले आनन्दकन्द* नाम के अष्टदल कमल-चक्र में आगे के क्रम से पीठों की कल्पना करता हुआ उनका न्यास करे—

ॐ अधारशक्तये नमः, ॐ मूलप्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ वाराहाय नमः, ॐ पृथिव्यैनमः, ॐ सुधाम्बुधये नमः, ॐ मणिद्वीपाय नमः, ॐ पारिजाततरवे नमः, ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः, ॐ मणि-माणिक्यवेदिकायै नमः, ॐ पद्मासनाय नमः । इन सब पीठों का हृदय में न्यास करे। इसके बाद दाहने कन्धे में ॐ धर्माय नमः, बायें कन्धे में ॐ ज्ञानाय नमः, बाईं जाँघ में ॐ वैराग्याय नमः, दाहनी जाँघ में ॐ ऐश्वर्याय नमः, मुख में ॐ अधर्माय नमः, बायें पार्श्व में ॐ अज्ञानाय नमः, नाभि में ॐ अवैराग्याय नमः, दाहने पार्श्व में ॐ अनैश्वर्याय नमः का न्यास करे। तदनन्तर पूर्वोक्त आनन्द-कन्द नामक अष्टदलकमल-चक्र में न्यास करे—ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संविन्तालाय नमः, ॐ सर्वतत्त्वात्मक पद्माय नमः, ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, ॐ विकारमय केशरेभ्यो नमः, ॐ पञ्चाशद्वर्ण बीजाढ्य कर्णिकायै नमः, अं सूर्यमण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः, ॐ चन्द्रमण्डलाय षोडश कलात्मने नमः, मं वह्निमण्डलाय दश-

*इष्ट-देवता की मानसिक पूजा इसी चक्र में की जाती है

कलात्मने नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। फिर कमल दलों में पीठ शक्तियों और पीठ भैरवों का अपने अपने कुल-क्रम के अनुसार न्यास करे। अन्त में 'अमुक देवता योग पीठाय नमः' से न्यास करे।

इसके बाद साधक कच्छप-मुद्रा से दो सुगन्धित पुष्प लेकर और अपने दोनों हाथ हृदय पर धरकर इष्ट-देवता का आनन्द-कन्द-चक्र की उक्त योग-पीठ पर ध्यान करे और इष्ट-देवता के सिर पर एक फूल चढ़ावे। तब भक्ति-भाव से इष्ट-देवता की मानसिक पूजा करे।

मानसिक पूजा—साधक आगे के श्रुति-वचनों को पढ़ता हुआ इष्ट-देवता की मानसिक पूजा ध्यानपूर्वक करे। यथा—

*हृत्पद्मासनम् दद्यात् सहस्रारच्युतामृतैः।
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत् ॥ १ ॥

---

*अर्थात् साधक इष्टदेवता को बैठने के लिए आनन्दकन्दकमल को आसन रूप से अर्पित करे। फिर सहस्रदलकमल-चक्र से टपकते हुए अमृत को मनरूपी कटोरे में भर कर उससे इष्टदेवता के पैर धोवे और उसी अमृत से उसको आचमन करा कर स्नान करावे। फिर आकाश-तत्त्व को कपड़े के रूप में, प्राणतत्त्व को धूप के रूप में दे। इसी प्रकार अपना हृदय, प्राण-वायु, अग्नि-तत्त्व और अमृत-सागर क्रम-पूर्वक पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य के रूप में अर्पित करे। फिर अनाहत-चक्र में

तेनामृतेनाचमनं स्नानीयमपि कल्पयेत् ।
आकाशतत्त्वं वसनं गन्धन्तु गन्धतत्त्वकम् ॥ २ ॥
चित्त प्रकल्पयेत् पुष्पं धूपं प्राणान् प्रकल्पयेत् ।
तेजस्तत्त्वन्तु दीपार्थे नैवेद्यञ्च सुधाम्बुधिम् ॥ ३ ॥
अनाहतध्वनिं घण्टां वायुतत्त्वञ्च चामरम् ।
नृत्यमिन्द्रियकर्माणि चाञ्चल्य मनमस्तथा ॥ ४ ॥

होनेवाले घण्टे के शब्द को वाद्य के रूप में और चामर तथा पंखे के लिए वायु-तत्त्व को प्रदान करे। फिर उसे नृत्य का आनन्द लेने के लिए इन्द्रियों और मन की चञ्चलता को समर्पित करे। इसके बाद भाव-सिद्धि या शुद्ध बोध के अमायिकता, निरहंकार, अराग, अमद, अमोह अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य, अलोभ रूपी पुष्पों तथा अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, क्षमा और ज्ञान रूपी अत्यन्त श्रेष्ठ पुष्पों से उसकी भले प्रकार पूजा करे। स्वभाव के पन्द्रह भेद-रूपी इन भव्य पुष्पों से इष्ट-देवता की तन्मय होकर पूजा करनी चाहिए। इसके बाद अमृत का सागर, मांस और भुनी मछली का पर्वत, मुद्राओं का ढेर, खीर, कुलामृत, स्त्री-पुष्प और कुल-नायिका का पीठ-प्रक्षालित वारि कल्पना-द्वारा उसे प्रदान करे। तब सारे लोभ और क्रोध के भाव को त्याग कर जप प्रारम्भ करे। इस अवसर पर काल्पनिक माला का उपयोग होता है। इस माला की गुरियाँ विन्दु-युक्त अं आदि मातृका-वर्ण और क्षं सुमेरु है। यह माला मूलाधारस्थित कुण्डली में गुही हुई है। जप इस प्रकार करे। पहले विन्दु-युक्त अ से लेकर ल तक सारी

पुष्पं नानाविधं दद्यादात्मनो भावसिद्धये ।
अमायमनहङ्कारमरागममदन्तथा ॥ ५ ॥
अमोहकमदम्भञ्च अद्वेषाक्षोभकं तथा ।
अमात्सर्य्यमलोभञ्च दश पुष्पं प्रकीर्तितम ॥ ६ ॥
अहिंसा परम पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
दयाक्षमाज्ञानपुष्पं पञ्चपुष्पं ततः परम ॥ ७ ॥
इति पञ्चदशैः पुष्पैर्भावरूपैः प्रपूजयेत ।
सुधाम्बुधिं मांसशैलं भर्ज्जितं मीनपर्वतम ॥ ८ ॥
मुद्राराशिं सुभक्तञ्च घृताक्तं पायसं तथा ।
कुलामृतञ्च तत्पुष्पं पीठक्षालनवारि च ॥ ९ ॥
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ वलिं दत्वा जपं चरेत् ।
माला वर्णमयी प्रोक्ता कुण्डलीसूत्रयन्त्रिता ॥ १० ॥

मात्रिकायें कह जाय और उसके अन्त में मूल-मन्त्र कहे, फिर विन्दु-सहित ल से लेकर अ तक मात्रिकायें कहे और अंत में मूल-मन्त्र कहे। यह अनुलोम-विलोम क्रम हुआ। परन्तु यह जप करते समय मूल-मन्त्र के आदि में 'अः ङ ञ ण न म व ल' मिलाकर जप करना चाहिए। इस प्रकार १०८ बार जपकर जप-फल को मूलमन्त्र के द्वारा इष्ट-देवता को अर्पित कर दे और कहे—हे अमुकदेवी, तू अन्ततम आत्मा में निवास करती है, तू अन्तज्योति है। हे माता, तू मेरा यह मानसिक जप स्वीकार कर। मैं तुझे प्रणाम करता हूँ। इसके बाद वह उसे मानसिक साष्टाङ्गदण्डप्रणाम करे।

सविन्दुं मंत्रमुच्चार्य मूलमंत्रं समुच्चरेत् ।
अकारादिलकारान्तमनुलोम इति स्मृतः ॥ ११ ॥
पुनर्लकारमारभ्य श्रीकण्ठान्तं मनुं जपेत ।
विलोम इति विख्यातः क्षकारो मेरुरुच्यते ॥ १२ ॥
अष्टवर्गान्तिमैर्वर्णैः सहमूलमथाष्टकम् ।
एवमष्टोत्तरशतं जप्त्वानेन समर्पयेत ॥ १३ ॥
सर्वान्तरात्मनिलये स्वान्तर्ज्योतिःस्वरूपिणि ।
गृहाणान्तर्जपं मातः('आद्ये देवि !) नमोस्तुते ॥ १४ ॥
समर्प्य जपमेतेन साष्टाङ्गं प्रणमेद्धिया ॥ १५ ॥

इस मानस-याग के बाद साधक यंत्रराज की स्थापना करे। यदि साधक-काली कुल [2] का हो तो उसे पहले विशेष पात्र [3]

---

१ यह। इष्टदेवता का नाम उच्चारण करे

२ काली, तारा, रक्तकाली, भुवनेश्वरी, महिषमर्दिनी, त्रिपुरा, दुर्गा और प्रत्यंगिरा ये काली-कुल की शक्तियाँ हैं। सुन्दरी, भैरवी, वाला, बगला, कमला, धूमावती, मातंगी और श्वप्नावती, ये श्रीकुल की शक्तियाँ हैं। (निरुत्तरतंत्र)

३ विशेष पात्र की विधि—

सामन्य-अर्ध्य के जल से अपनी बाईं ओर सामने भूमि में 'ह्रीं' वीज-युक्त त्रिकोण बनावे। इस त्रिकोण को वृत्त और वर्ग से घेर दे। फिर इस मण्डल में वह 'ह्रीं आधारशक्तये नमः' से आधार-शक्ति की पूजा करे और आधार को धोकर मण्डल पर स्थापित करे। इसके

का स्थापन करना चाहिए। उसके बाद यंत्रराज का स्थापन*
करना चाहिए। यदि वह श्रीकुल का साधक है तो उसे सीधा
कलश का ही स्थापन करना चाहिए। उसे यन्त्रराज की स्थापना
उसकी पूजा के समय करना चाहिए।

बाद वह 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने विशेषार्घ्याय नमः' से उस आधार की पूजा करे। तब पात्र को 'फट्' मन्त्र से धोकर आधार पर स्थापित करे। फिर 'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलाय नमः' से पात्र का पूजन करे। इसके बाद पात्र को तीन भाग मद्य से और एक भाग जल से पूर्ण करे। मद्य डालते समय मूल-मन्त्र पढ़ता जाय। फिर पात्र में सुगन्ध और पुष्प छोड़कर 'उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से पूजन करे। इसके बाद इस विशेषार्घ्य-पात्र में रक्तचन्दन से लिप्त बिल्व-पत्र पर दूब और अक्षत इस प्रकार रक्खे कि दूब के सिरे पात्र के द्रव्य को छूते रहें। मूलमन्त्र से अङ्कुश-मुद्रा के द्वारा—'गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु'—इस मंत्र से तीर्थों का आवाहन कर साधक इष्ट-देवता का ध्यान करे और सुगन्ध तथा पुष्प से उसकी पूजा करे। फिर बारह बार मूल-मन्त्र का जपकर वह पात्र पर धेनु तथा योनि-मुद्रायें दिखावे और धूप-दीप दे। फिर पात्र से कुछ द्रव्य एक पात्र में लेकर अपने तथा पूजा की सामग्री के ऊपर छिड़के।

*यन्त्रराज की स्थापना—साधक यन्त्रराज के स्थापन की क्रिया इस प्रकार करे—वह मूल-मन्त्र पढ़ता हुआ सोने, चाँदी या ताँबे के पत्र पर

चक्र-पूजा*—(१) कलश-स्थापन—इसके बाद साधक कलश के स्थापन की क्रिया करे। वह अपने बायें एक षट्कोण चक्र बनावे। उसके बीच में एक विन्दु बनाकर उसे वृत्त और चतुष्कोण से घेर दे। इस चक्र को सिन्दूर, कुल-पुष्प या रक्त चन्दन से खींचना चाहिए। चक्र खींचकर उसमें—'ॐ आधारशक्त्यै नमः'—से आधार-शक्ति की पूजा करे और 'नमः' मन्त्र से आधार को धोकर उसपर स्थापित करे। फिर कलश को 'फट्' मन्त्र से धोकर आधार पर रक्खे। तब वह सविन्दु मात्रिकाओं के साथ मूल-मन्त्र पढ़ता हुआ कलश को मद्य से भर दे और इष्ट-देवता के भाव से अभिभूत हो कर आधार में—'म वन्हिमण्डलाय दशकलात्मने नमः'—से वह्नि की,—'अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः'—से कलश पर सूर्य की और कलशस्थ द्रव्य में—'ॐ सोममण्डलाय

सोने की सलाई या बिल्व के काटे से अपने इष्टदेवता का यन्त्र खींचे। उक्त पत्र कुल-पुष्प, चन्दन अगर या केसर से लिप्त होना चाहिए और यन्त्र को रक्त चन्दन या अष्टगन्ध से खींचना चाहिए। यन्त्र खींच चुकने पर उसे अपने सम्मुख किसी सुन्दर आधार पर—'ह्सौः सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासनाय नमः'—पढकर पुष्प पर स्थापित कर दे और पीठ-न्यास के अनुसार पीठों की पूजा करे। यदि यन्त्र-विग्रह हो तो यन्त्र के खींचने की आवश्यकता नहीं है। उसी को उक्त मंत्र से स्थापित करना चाहिए।

* जो साधक केवल चक्रार्चन करते हैं वे विघ्न-निवारण, आसन-पूजा और सामान्यार्घ्य का स्थापन करके यहीं से पूजा आरम्भ करते हैं।

षोडशकलात्मने नमः'—से चन्द्रमा की कलाओं का पूजन करे। इसके बाद कलश को सिन्दूर और रक्त चन्दन से चर्चित कर रक्त पुष्पों की माला से विभूषित करे।

(२) पञ्चीकरण—फिर साधक पञ्चीकरण करे। वह कलश को कुश के शिरोभाग से ताड़ित करे। फिर 'ह्रीं' बीज पढ़कर अवगुण्ठन-मुद्रा से कलश का अवगुण्ठन करे। तब वह 'ह्रीं' बीज पढ़कर कलश को दिव्य दृष्टि से देखे। इसके बाद 'नमः' मन्त्र से कलश का अभिषेक करे। अन्त में तीन बार कलश को मूल-मन्त्र पढ़ता हुआ सूंघे।

(३) मद्य-शोधन—फिर साधक कलश को प्रणाम करके उसमें रक्त पुष्प छोड़े और मन्त्रों से मद्य का संशोधन करे। यथा—

ॐ एकमेव परंब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम॥[1]
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम॥[2]

१ अर्थात् हे सुधादेवी, मैं उस परब्रह्म के द्वारा जो अद्वितीय है, जो स्थूल और सूक्ष्म दोनों है, कच की ब्रह्महत्या के पाप से तुझे मुक्त करता हूँ।

२ हे सूर्यमण्डलसम्भूत, हे समुद्र से उत्पन्न, हे अमाबीजवाली (चन्द्रमा की १६ वीं कला जो अमृत प्रदान करती है उसे अमा कहते हैं), हे देवी, तू शुक्र के शाप से मुक्त हो जा।

वेदानां प्रणवो वीजं ब्रह्मानन्दमयो यदि ।[१]
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहत ॥
वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः ।[२]
क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः श्रीं ह्रीं सुधा कृष्णशापं मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा[३] ।

उपर्युक्त मंत्रों को तीन तीन बार पढ़ कर सुरा का शापोद्धार करे। इसके बाद—ऐं ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुरादेव्यै धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात्[४]—इस सुरा-गायत्री-मन्त्र से उसे दस बार अभिमन्त्रित करे।

इसके बाद वेद-मन्त्र से तीन बार अभिमन्त्रित करे। यथा—
ह्रीं हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिष तिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्[५] ।

१ हे देवी, वेदों का प्रणव ब्रह्मानन्दमय है। इस सत्य बात के द्वारा, हे देवी, तेरा ब्रह्महत्या का पाप छूट जाय।

२ अर्थात् ब्रह्मशाप से मुक्त होने के लिए सुधादेवी को नमस्कार है।

३ अर्थात् मद्य को कृष्ण के शाप से मुक्त करो और उसमें अमृत छोड़ो छोड़ो।

४ अर्थात् हम आनन्देश्वर का ज्ञान प्राप्त करें, सुधादेवी का ध्यान करें, वह अर्द्धनारीश्वर हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करे।

५ अर्थात् परमहंस (आदित्य) तेजोमय स्वर्ग में निवास करता है,

फिर मस्तक में सहस्रदलकमलचक्र में गुरुदेव का और हृदय के आनन्द-कमलचक्र में इष्ट-देवता का ध्यान करे और उनका प्रणाम करे। फिर कलश-द्रव्य में—गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु—इस मंत्र से सूर्य-मण्डल से अंकुश-मुद्रा से तीर्थों का आवाहन कर कलश-द्रव्य को तीर्थमय करे।

इस प्रकार कलशस्थ द्रव्य का संस्कार कर उसमें साधक आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का ध्यान करे। आनन्दभैरव का ध्यान इस प्रकार करे—

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम।
अष्टादशभुजं देवं पंचवक्त्रं त्रिलोचनम॥
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम।
वृषारूढं नीलकंठं सर्वाभरणभूषितम॥
कपालखट्वांगधरं घंटाडमरुवादिनम।
पाशांकुशधरं देवं गदामूसलधारिणम॥
खड्गखेटकपट्टीशं मुग्दरं शूलदण्डधृक्।

वह वसु के रूप में स्वर्ग और पृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में भ्रमण करता है। वह पृथ्वी पर वैदिक अग्नि के रूप में और होता के रूप में निवास करता है। उसकी पूजा अतिथि के रूप में होती है। वह गृहस्थ की अग्नि में है और मनुष्य की चेतनता में है और वह सत्य-लोक में निवास करता है। वह सत्य में और आकाश में स्थित है।

खेटकम मुण्डं हस्तञ्च वरदाभयविग्रहम ॥
लोहितं देवं देवेशं भावयेत्साधकोत्तमः ॥१॥
आनन्दभैरवी का ध्यान इस प्रकार करे—
भावयेच्च सुरां देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम ।
हिमकुन्देन्दुधवलां पंचवक्त्रां त्रिलोचनाम ॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वायुधकरोद्यताम ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम ॥ २॥

इस प्रकार आनन्दभैरव व आनन्दभैरवी का ध्यान

१—अर्थात करोड़ों सूर्य के प्रकाशवाले, करोड़ों चंद्रमाओं के समान शीतल, अठारह हाथोंवाले, पाँच मुँहवाले और तीन नेत्रोंवाले, अमृत के समुद्र के बीच में ब्रह्म-पद्म पर बैठे हुए, बैल पर आसीन, नीले कंठवाले, सब आभूषणों से भूषित, कपाल और खट्टांग लिये, पाश, अंकुश, गदा, मूसल, खड्ग, खेटक, पट्टीश, मुग्दर, शूल और दण्ड लिये, घंटा और डमरू बजाते हुए, दो हाथों से वरदान देते और अभय करते हुए रक्तवर्ण देवेश अर्थात् देवों के देव आनंदभैरव का ध्यान करे।

२—अर्थात् करोड़ों चंद्रमाओं की प्रभावाली हिम, कुंद और चन्द्रमा के वर्णवाली, पाँच मुँह और तीन आँखों वाली, अठारह हाथों से युक्त तथा सब हाथों में अस्त्र लिये हँसती हुई, बड़ी बड़ी आँखों-वाली आनन्दभैरव की ओर मुँह किये हुए सुरादेवी अर्थात् आनन्द-भैरवी का ध्यान करे।

करता हुआ साधक उनका क्रम से कलश-द्रव्य में पूजन करे[१]। आनन्दभैरव का 'सहक्षमलवरयूँ आनन्दभैरवाय वषट्' मन्त्र से पूजन व इस मंत्र का तीन बार जप करे और आनन्द-भैरवी का 'हसक्षमलवरयीं सुरादेव्यै वौषट्' मन्त्र से पूजन व इस मन्त्र का तीन बार जप करे। इसके बाद वह आनन्दभैरव व आनन्दभैरवी का दिव्य मिथुनावस्था में ध्यान करे और इस बात का अनुभव करे कि उनके दिव्य सम्भोग से उद्भूत अमृत-रस से कलश-द्रव्य पूर्ण हो गया है। इसके बाद कलश-द्रव्य को धेनु-मुद्रा दिखाकर उसको अमृतमय करे। फिर 'वं' सुधा-बीज और मूल-मंत्र का कलश को पकड़ कर आठ आठ बार जप करे और उस द्रव्य को देवतामय समझे। वह तब पुष्पाञ्जलि प्रदान करे और धूप-दीप तथा घण्टा-वादन करे।

(४) मांस आदि शोधन—इसके बाद साधक अपने सम्मुख त्रिकोण खींचे और उस पर मांस का पात्र स्थापित कर उसका शोधन करे। 'फट्' मन्त्र से उस पर जल छिड़के। फिर उस पर तीन बार 'यं' और 'रं' बीज का जप करे। फिर 'हुँ' बीज से उसे अवगुण्ठन-मुद्रा से अवगुण्ठित करे और 'फट्' मन्त्र से उसकी रक्षा करे। इसके बाद 'वं' बीज पढ़कर और धेनु-मुद्रा दिखाकर साधक उसे अमृत सदृश करे और यह मन्त्र पढ़े—

३—वास्तव में यह परब्रह्म और परमेश्वरी के उस रूप की पूजा है जो तंत्र में 'सकल ब्रह्म' कहा गया है।

ॐ प्र तद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुपु त्रिपु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।[1]

इसी प्रकार मत्स्य-पात्र को त्रिकोण-मण्डल पर स्थापित कर 'फट्'मन्त्र से उस पर जल छिड़के। 'य' और 'र' वीजों से तीन तीन बार अभिमन्त्रित करे और 'हुं' वीज से अवगुण्ठन-मुद्रा से उसका अवगुण्ठन करे। फिर 'व' बीज जप धेनु-मुद्रा दिखा उसे अमृत-सदृश करे और यह मन्त्र पढ़े—

ह्रीं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्[2]

इसके बाद मुद्रा-पात्र पूर्ववत त्रिकोण-मण्डल पर स्थापित करे और 'फट्' मंत्र से उस पर जल छिड़क 'यं' और 'रं' वीजों से उसे अभिमन्त्रित करे। फिर 'हूं' वीज से अवगुण्ठन-मुद्रा-द्वारा

---

१ अर्थात् पर्वत पर स्थित, प्राणीवध से जीनेवाले, भयंकर सिंह के समान, सर्वव्यापी विष्णु साधारण वीर-कर्म से स्तुति को प्राप्त होते हैं, जिन विष्णु के महान तीन पाद-प्रक्षेपवाले लोकों में सम्पूर्ण प्राणीजात निवास करते हैं।

२ अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों के पिता उस त्र्यम्बक शिव की हम पूजा करते हैं जो पुष्टि का कारण है और जो सुगन्धि-वाला है। उरवारुक का फल जैसे अपनी डाल से अपने आप गिर जाता है, उसी तरह हम भी कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जायँ, यहाँ तक कि आखिर में हम मुक्त ही हो जायँ और परमात्मा में लय हो जायँ।

उसका अवगुण्ठन करे। तब वं बीज जप धेनु-मुद्रा दिखला मुद्राओं को अमृत-सदृश करे और पढ़े--

ॐ तद्विष्णोः परमं पद सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम ॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्[3] ॥

फिर साधक स्व-शक्ति का पूजन कर वह उसे अपने दाहने बैठावे। वह 'ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीं कुरु स्वाहा,[4]—इस मन्त्र से शक्ति पर जल छिड़के। यदि शक्ति अनभिषिक्त हो तो उसके कान में 'ह्रीं' बीज का उच्चारण कर दे। जो अन्य शक्तियाँ उपस्थित हों उन सबकी भी वह पूजा करे। तब यह मन्त्र पढ़े—

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते। ॐ गर्भं धेहि सिनीवालि

३ अर्थात् जैसे साधारण लोगों को सूर्य स्पष्ट रूप में दिखाई देता है, उसी तरह बुद्धिमान् लोगों को विष्णु के श्रेष्ठ चरण सदा दिखाई देते रहते हैं। जो सुधी और भक्तजन अपने मन को वश में रखता है तथा जागता रहता है वह विष्णु के अत्यन्त ही श्रेष्ठ चरणों का दर्शन करता है।

४ अर्थात् त्रिपुरा को नमस्कार है। इस शक्ति को शुद्ध करो। इसे मेरी शक्ति बनाओ।

गर्भं धेहि सरस्वति । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥*

(५) श्रीपात्र का स्थापन—साधक अपने और यन्त्रराज के बीच में ह्रीं बीज के सहित त्रिकोण खींचे। फिर उसके बाहर वृत्त, षट्कोण और वर्ग बनावे। तब वह वर्ग के चारों कोनों में पूर्व के कोने से क्रम-पूर्वक आगे के मन्त्रों से चार पीठों का पूजन करे। यथा—पुं पूर्णशैलाय पीठाय नमः, उं उड्डीयानाय पीठाय नमः, जां जालन्धराय पीठाय नमः, कां कामरूपाय पीठाय नमः। इसके बाद षट्कोण के प्रत्येक कोने में षडङ्गों की पूजा करे। यथा—ह्राँ हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूँ शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। फिर त्रिकोण की पूजा मूलमन्त्र से करे और तब 'ह्रीं आधारशक्तये नमः'—इस मंत्र से आधार-शक्ति का मण्डल पर पूजन कर त्रिकोण-षट्कोण-भूषित आधार-रूपी यन्त्रिका को सामान्यार्घ्य के जल से 'नमः' मन्त्र से धोकर उस मण्डल पर स्थापित करे।

इसके बाद साधक उस यन्त्रिका में वह्नि की दश कलाओं

---

* अर्थात् विष्णु गर्भ धारण करने की शक्ति प्रदान करें। त्वष्टा रूप प्रदान करें। प्रजापति उसका अभिसिञ्चन करें। धाता उसके धारण करने की शक्ति उसे प्रदान करें। सिनीवाली (गर्भ-देवता) तेरे गर्भ को सहारा दें, सरस्वती तेरे गर्भ को सहारा दें और कमल की माला पहननेवाले दोनों अश्विनी तेरे गर्भ को सहारा दें।

का पूजन करे। यथा—धूं धूम्रायै नमः, अं अर्चिषे नमः, ज्वं ज्वलिन्यै नमः, सूं सूक्ष्मायै नमः, ज्वां ज्वालिन्यैः नमः, विं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, सुं सुश्रियै नमः, सुं सुरूपायै नमः, कं कपिलायै नमः, हं हव्यकव्यवहायै नमः। तब 'मं वह्निमण्डलाय दश कलात्मने नमः' से वह्निमण्डल की पूजा करे। इसके बाद अर्घ्यपात्र को 'फट्' मन्त्र से जल-द्वारा शुद्ध कर पूर्वोक्त यंत्रिका पर स्थापित कर दे। फिर उसमें सूर्य की बारह कलाओं का पूजन करे। यथा-कं भं तपिन्यै नमः, खं नं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुच्यै नमः, छं दं सुधूम्रायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः। तब अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः'—से सूर्यमण्डल का पूजन करे।

इसके बाद साधक उस पात्र का तीन-चौथाई भाग कलशस्थ द्रव्य से सअनुस्वार मात्रिका वर्णों को उलटा पढ़ता हुआ (अर्थात् क्षं...अं) पूर्ण करे और शेष भाग सामान्यार्घ्य-पात्र के जल से (काली-कुल का साधक विशेषार्घ्य-पात्र के द्रव्य से) भर दे। तब वह एकाग्र होकर उसमें चन्द्रमा की सोलह कलाओं का पूजन करे। यथा—अं अमृतायै नमः, आं प्राणदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्टये नमः, उं पुष्टये नमः, ऊं रतये नमः, ऋं धृतये नमः, ॠं शशिन्यै नमः, लृं चन्द्रिकायै नमः, ॡं कान्तये

नमः, ए ज्योत्स्नायै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीतये नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः। तब 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से चन्द्रमण्डल की पूजा करे।

इसके बाद साधक दूर्वा, अक्षत, रक्त पुष्प, वर्वर पत्र, और अपराजिता के फूल आदि 'ह्रीं' मन्त्र से श्रीपात्र में छोड़ कर 'गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु'—इस मत्र से सूर्य-मण्डल से अंकुशमुद्रा-द्वारा तीर्थों का उसमें आवाहन करे। तब अवगुण्ठन-मुद्रा से पात्र को ढँक कर 'फट्' मन्त्र से उसकी रक्षा करे। फिर धेनु-मुद्रा से पात्रस्थ द्रव्य को अमृतमय कर मत्स्यमुद्रा से उसे आवृत करे। तब दस बार मूल-मन्त्र का जप करे और अञ्जलि में पुष्प लेकर इष्टदेवता की स्तुति और पूजा करे। फिर आगे के मन्त्रों से पात्रस्थ द्रव्य को अभिमन्त्रित करे—

अखण्डैकरसानन्दाकरे परसुधात्मनि।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेहि कुलरूपिणि ॥१॥
अनङ्गस्थामृताकारे शुद्धज्ञानकलेवरे।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥२॥
तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृत्वार्घ्यं तत्स्वरूपिणि।
भूत्वा कुलामृताकारं मयि विस्फुरणं कुरु ॥३॥
ब्रह्माण्डरससम्भूतमशेषरससम्भवम।

आपूरितं महापात्रं पीयूष-रसमावह ॥४॥
अहन्ता पात्रभरितमिदन्तापरमामृतम ।
पराहन्तामये वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम ॥५॥ ❀

श्रीपात्र को इस प्रकार अभिमन्त्रित कर साधक उसी विराट् 'सकल ब्रह्म' के रूप का ध्यान कर उनके (शिव-शक्ति) संयोग से पात्र में उत्पन्न रस को यह समझे कि वह श्रीपात्र के द्रव्य में मिलकर एक रस हो गया है। तब पात्र के द्रव्य के इस नये रूप की गन्ध और पुष्प से पूजा कर धूप-दीप करे।

(६) अन्य पात्र-स्थापन—इसके बाद कलश और श्रीपात्र के बीच सामान्यार्घ्य के स्थापन की क्रिया के अनुसार गुरुपात्र, भोग-पात्र, शक्तिपात्र, योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, पाद्यपात्र और आचमनीयपात्र आदि अन्य आठ पात्र स्थापित करे। श्रीपात्र-

❀ अर्थात् हे कुल-रूपिणी, पूर्ण और अखण्ड आनन्द प्रदान करने-वाली, इस उत्कृष्ट मदिरा के सार में उसकी स्वच्छन्द स्फुरणा भर दे ॥१॥ हे अनंग के अमृत की रूपवाली, हे विशुद्ध ज्ञानरूपी शरीरवाली, हे मुसकानेवाली, इस पदार्थ में अमृत भर दे ॥२॥ हे उसी के रूपवाली, तू उसी के माधुर्य-रस के रूप मे अर्घ्य-पात्र की मदिरा से उसे एक कर और कुलामृत होकर मुझमें विस्फूर्ति पैदा कर ॥३॥ हे देवी, मदिरा से पूर्ण इस पात्र में ब्रह्माण्ड के रसों से उत्पन्न अशेष रसों से निकाला हुआ अमृत-रस लाकर भरो ॥४॥ हे प्रभु, इस आत्मा के पात्र का जो आत्मा के अमृत से भरा हुआ है, परमात्मा की अग्नि में हवन हो जाय ॥५॥

सहित नौ पात्र हुए। इन पात्रों का तीन-चौथाई भाग कलशस्थ द्रव्य से पूर्ण करे और चना बराबर शुद्धि खण्ड इनमें डाले।

(७) तर्पण—पात्र-स्थापन के बाद साधक तर्पण-कर्म करे। पहले वह विराट् रूप आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का तत्त्व-मुद्रा से 'श्रीपात्र' का द्रव्य अर्पित करे। वह शुद्धि-खण्ड को श्रीपात्र के द्रव्य में डुबो कर उसे अपने हृदय-कमल पर छिड़क कर 'सहक्ष-मलवरयू आनन्दभैरवाय वषट् तर्पयामि नमः'—इस मंत्र से आनन्दभैरव को वह द्रव्य तीन, पाँच या सात बार अर्पित करे। फिर उसी प्रकार 'हसक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वौषट् तर्पयामि नमः'—इस मंत्र से आनन्दभैरवी को वह द्रव्य अर्पित करे।

इसके बाद साधक 'गुरु-पात्र' से उसका द्रव्य गुरु-औघों को मस्तक में सहस्रकमल में अर्पित करे। यथा—'ऐं गुरुं शक्ति-सहितं तर्पयामि नमः'—से गुरु को और उनकी पत्नी को, ऐं परम गुरु शक्तिसहित तर्पयामि नमः'—से परमगुरु को और उनकी पत्नी को, 'ऐं परापरगुरुं शक्तिसहितं तर्पयामि नमः'—से परापर गुरु को और उनकी पत्नी को 'ऐं परमेष्ठी गुरुं शक्तिसहित तर्पयामि नमः'—से परमेष्ठी गुरु को और उनकी पत्नी को प्रत्येक को वह द्रव्य मस्तक पर छिड़ककर तीन तीन बार अर्पित करे। गुरु-औघ के सबके या किसी एक का नाम याद हो तो उनके नाम की भी योजना यथास्थान कर लेनी चाहिए।

इसके बाद साधक 'भोगपात्र' से अपने हृदयकमल में इष्ट-

देवता का—'मूल-मन्त्र परमेश्वरि स्वाहा अमुक देवीं तर्पयामि स्वाहा' —इस मंत्र से तीन बार तर्पण करें। फिर 'शक्ति-पात्र' से उसी प्रकार अंगावरणों का 'अंगदेवतास्तर्पयामि स्वाहा'—इस मंत्र से अंग (षडंग) देवताओं का तर्पण करें और 'आवरणदेवतास्तर्पयामि स्वाहा'—इस मंत्र से आवरण (अनुगामी) देवताओं का तर्पण करें। तब 'योगिनी-पात्र' से उसी प्रकार 'मूल-मन्त्र परमेश्वरि स्वाहा सायुधां सपरीकराम अमुकदेवीं तर्पयामि स्वाहा'—इस मंत्र से आयुधों और परीकरों के सहित इष्ट-देवता का तर्पण करें।

---

*श्री कुल में इस क्रिया में कुछ भेद है। जो इस प्रकार है—

पहले गुरुओं का गुरु-पात्र से तर्पण करे। फिर 'मूलमंत्र परमेश्वरि स्वाहा अमुकी देवी तर्पयामि नमः'—इस मंत्र से श्रीपात्र के द्रव्य से अपने हृदय-कमल में इष्टदेवता का तीन या सात बार तर्पण करे। फिर वह 'भोगपात्र' के द्रव्य से अपने हाथों का मार्जन करे। फिर दाहने हाथ की हथेली में त्रिकोण बनाकर उसके तीनों कोनों में शुद्धिखण्ड रक्खे। इसके बाद बायें हाथ के अँगूठे, अनामिका और मध्यमा से एक कोने का शुद्धिखण्ड उठा कर और 'मूल-मन्त्र ह्रीं श्रीं आत्म-तत्त्वेन स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर खा जाय। उसी प्रकार दूसरे अर्थात् दाहने कोने के शुद्धिखण्ड को 'मूलमंत्र ह्रीं श्रीं विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा'—यह मंत्र पढ़कर और सामने के शुद्धि-खण्ड को 'मूल-मंत्र ह्रीं श्रीं शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा' यह मंत्र पढ़कर खा जाय। इस के बाद वह अपने हाथ धो डाले और अँगौछे से

(८) पञ्चवलि—अब साधक वटुक आदि को आगे की विधि के अनुसार वलि देवे। वह अपने बायें एक चतुष्कोण मंडल बनाये और उसके चारों कोनों और बीच में मद्य-मांस-सहित अन्न आदि पाँच भागों में स्थापित करे। तब वह पूर्व भाग में 'वां वटुकाय नमः' इस मन्त्र से वटुक की पूजा करे। फिर 'एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ पिंगलजटाभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशय नाशय

—

पोछ कर फिर विंदु स्वीकार करे। वह भोगपात्र से कारण लेकर उसे मूल-मंत्र पढ़ता हुआ पान कर जाय। तब वह तत्त्वशुद्धि करे। यथा—

ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥१॥ पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥२॥ ॐ प्रकृत्यहंकार-बुद्धिर्मनःश्रोत्राणि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥३॥ ॐ त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवचांसि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥४॥ ॐ पाणिपादोपस्थशब्दा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥५॥ ॐ स्पर्शरूपगन्ध-रसानि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥६॥ ॐ वायुतेजःसलिलभूतात्मनो मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥७॥ साधक इन मन्त्रों को पढ़कर तत्त्व-शुद्धि करने के बाद योगिनी-पात्र से रश्मिवृन्द का, वलिपात्र से वटुक आदि का, श्रीपात्र के अमृत से पूजा-द्रव्यों का प्रोक्षण करे।

सर्वोपचारसहित बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा'[१]—यह मंत्र पढ़कर बायें अंगूठे और अनामिका से बलिभाग पर जल गिरावे और कहे—'एष बलिर्वटुकाय नमः'। इसी प्रकार दक्षिण के भाग में 'यां योगिनीभ्यो नमः' से योगिनी की पूजा कर 'ॐ ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निस्तले वा पाताले वा तले पवनसलिलयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिं विधिना पातु वीरेन्द्रवन्द्या[२]—यह मन्त्र पढ़कर दाहने अंगूठे और अनामिका से बलि-भाग पर जल गिरावे और कहे—'एष बलिः योगिनीभ्यो नमः'। फिर पश्चिम के भाग में 'क्षां क्षेत्रपालाय नमः'—इस मन्त्र से क्षेत्रपाल की पूजाकर—क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्र-पाल अखिलबलिसहितबलिं गृहाण गृहाण स्वाहा—यह मंत्र पढ़कर बायीं मूठी की तर्जनी और वृद्धा निकाल कर उस पर जल गिरावे और कहे—'एष बलिः क्षेत्रपालाय नमः'। इसके बाद उत्तर के भाग में 'गं गणपतये नमः' से

१—अर्थात् पिंगलवर्ण त्रिनयन ज्वालामुख जटाधारी देवीपुत्र वटुकनाथ, आओ, आओ, सभी विघ्नों का नाश करो, सब उपचारों के सहित दी गई बलि को ग्रहण करो, ग्रहण करो।

२—अर्थात् चाहे जिस लोक में चाहे जहाँ तुम विराजमान होओ। मेरी इस बलि से तुम प्रसन्न होओ। हे वीरों-द्वारा वन्दित, मेरी रक्षा करो।

गणेश की पूजाकर—गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृहाण गृहाण स्वाहा—यह मन्त्र पढ़कर बायें हाथ की सब अँगुलियाँ दण्डाकार कर वृद्धा और मध्यमा पर जल गिरावे और कहे—'एष बलिः गणपतये नमः'। तदनन्तर मण्डल के बीच के भाग में 'गें ह्रीं व्यापकमण्डलाय नमः' से सर्वभूतों का पूजनकर 'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यः हुँ फट् नमः'—यह मंत्र पढ़कर तत्त्व-मुद्रा से जल गिरा कर कहे—'एष बलिः सर्वभूतेभ्यो नमः'[१]।

इस प्रकार यहाँ तक चक्रार्चन की क्रिया हुई।

इष्ट-देवता की पूजा—इसके[२] बाद साधक कच्छप-मुद्रा बनावे और सुगन्ध-द्रव्य तथा चन्दन लगा हुआ एक फूल अपने हाथ में ले। फिर उसे अपने हृदय से लगा कर हृत्कमल-चक्र में

१ काली-कुल के साधक इनके बाद शिवाबलि भी देते हैं। यथा—मण्डल बनाकर उस पर शिवा देवी की पूजा कर और मांस का बलि-भाग स्थापित कर यह मंत्र पढ़े—गृहाण देवि महाभागे शिवे कल्पाग्नि-रूपिणि शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृहाण बलिं तव ह्रीं श्रीं क्रीं परमे स्वाहा। इसके बाद 'एष बलिः शिवायै नमः'—यह मंत्र पढ़कर जल से बलि-प्रदान करे।

२ यदि यंत्र-विग्रह हो तो आवाहन आदि क्रिया करने की आवश्यकता नहीं है। उसपर सीधा इष्ट-देवता की पूजा और उसकी आवरण-पूजा करनी चाहिए।

इष्ट-देवता का ध्यान करे। फिर उसे सुषुम्णा-नाड़ी के मार्ग से सहस्र-कमल-दल-चक्र में ले जाय और वहाँ उसे स्तुति से प्रसन्न करे। इसके बाद नासिका-मार्ग से उसे उसी पुष्प पर ला बिठावे। तब उस पुष्प को पूर्वोक्त स्थापित यन्त्र-राज[1] पर स्थापित कर दे और हाथ जोड़कर इष्ट-देवता से प्रार्थना करे। यथा—देवेशि भक्ति-सुलभे परिवारसमन्वितम्। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावद्देवि इहावह[2]।

इसके बाद इष्ट-देवता का यन्त्र-राज में आवाहन करे। यथा—'मूल-मन्त्र अमुक शिवसहिते अमुकदेवि (मूलमन्त्र के बाद शिव का नाम, फिर 'सहिते' पद, फिर इष्टदेवी का नाम तब 'देवि' पद) इहागच्छ इहागच्छ (आवाहनी मुद्रा[3]) इह तिष्ट इह तिष्ट (स्थापनी मुद्रा) इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि (संनिधापिनी मुद्रा) इह सन्निरुद्धस्व इह सन्निरुद्धस्व (सम्मुखी

---

१ अर्थात् हे देवों की रानी, हे भक्त को जल्दी प्राप्त होनेवाली, जब तक मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ तब तक तुम यहाँ विराजमान रहो।

२ श्रीकुल में यह भेद है। यंत्रराज पहले से स्थापित नहीं रहता, किन्तु वह इसी समय स्थापित किया जाता है और उसकी पीठ-पूजा कर चुकने पर देवता का उसमें आवाहन कर उसकी षोड़श प्रकार पूजा होती है। यहाँ काली-कुल के अनुसार विशेषार्घ्य की स्थापना के बाद यन्त्रराज की स्थापना-विधि दी गई है।

३ इन मुद्राओं को दिखाता हुआ आवाहन करे।

कारिणी मुद्रा) मम सर्वोपचारसहितां पूजां गृहाण गृहाण (सन्निरोधिनी मुद्रा)।[1]

इस प्रकार मन्त्र पढ़ और मुद्रा दिखला देवता का आवाहन कर साधक लेलिहानी मुद्रा दिखलाकर इष्ट-देवता की प्राण: प्रतिष्ठा करे। यथा—

'मूल-मन्त्र अमुक देवतायाः पञ्च प्राणाः इह स्थिताः जीव इह स्थितः सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः-श्रोत्रघ्राणप्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा'।[2]

साधक यह मन्त्र तीन बार पढ़कर यन्त्र में देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करे।

फिर साधक हाथ जोड़कर इष्ट-देवता से शुभागमन का प्रश्न करे। ऐसा करते समय वह 'विशेषार्घ्य' (श्री कुलवाला 'श्रीपात्र' से) से यन्त्रराज पर तीन बार जल डाले और तब वहीं इष्ट-देवता का ध्यान में षडङ्गन्यास करे। इससे देवता

१ अर्थात् हे अमुक देवी, यहाँ आओ यहाँ आओ, यहाँ स्थिर होओ, यहाँ स्थिर होओ, यहाँ अपने को स्थापित करो, यहाँ अपने को स्थापित करो, यहाँ स्थापित हो जाओ, यहाँ स्थापित हो जाओ। मेरी सब उपचारों के सहित पूजा को स्वीकार करो।

२—अर्थात् अमुक देवता के पञ्च प्राण यहाँ स्थित हैं, जीव यहाँ स्थित है, सब इन्द्रियाँ यहाँ स्थित हैं। उसकी वाणी, मन, त्वक्, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, प्राण यहाँ आकर सुख से स्थित हों।

का सकलीकरण हुआ। इसके बाद साधक इष्ट-देवता की पञ्चोपचार या षोडशोपचार से पूजा करे। यथा—

(१) 'मूल' इदं जलं अमुकी देव्यै पादप्रक्षालनाय नमः— इस मन्त्र से पाद्य-पात्र के जल से यन्त्रराज पर जल छोड़कर ध्यान से देवता के पैर धोवे। (२) 'मूल' इदं जल अमुकी देव्यै अर्घ्यं स्वाहा इस मन्त्र से अर्घ्य-पात्र का जल छोड़कर देवता को अर्घ्य प्रदान करे। (३) 'मूल' इदं जलं अमुकी देव्यै आचमनाय स्वधा—इस मन्त्र से आचमनीय पात्र का जल छोड़कर देवता को आचमन करावे। (४) 'मूल, इदं मधुपर्कं अमुकी देव्यै स्वधा'—इस मन्त्र से मधुपर्क (सहद और घी मिला हुआ दही) छोड़ कर देवता को मधुपर्क पान करावे। (५) वं स्वधा—इस मन्त्र से जल छोड़कर देवता को फिर आचमन करावे। (६) 'मूलं' अमुकी देव्यै स्वाहा इदं जल स्नानाय इमानि वस्त्राणि आभूषणानि च समर्पयामि स्वाहा- —इस मंत्र से जल छोड़कर देवता को स्नान करावे, और अच्छे भले प्रकार पोछ कर वस्त्र और आभूषण पहनावे। (७) 'मूल इदं सुगन्धद्रव्यं अमुकी देव्यै नमः—इस मन्त्र से देवता के हृदय मे मध्यमा और अनामिका से चन्दन का लेप करे। (८) 'मूलं' इमानि पुष्पाणि बिल्वपत्राणि च अमुकी देव्यै वौषट् —इस मन्त्र से देवता को मध्यमा और अनामिका से पुष्प और बिल्व-पत्र अर्पित करे। (९-१०) धूप और दीप देवता के सामने रख कर जलावे

और उन दोनों पर ढङ्ग से जल छोड़ कर यह मन्त्र पढ़े—'मूल' परमेश्वर्यै स्वाहा इदं धूपं इदं दीपञ्च अमुकी देव्यै समर्पयामि स्वाहा। इसके बाद इस मन्त्र से घंटा की पूजा करे—जय-ध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा। फिर घंटा को हाथ में लेकर बजावे और दाहने हाथ में धूपपात्र लेकर देवता के सामने अर्द्धचन्द्रा-कार घुमाकर धूप प्रदान करे। फिर धूपपात्र को देवता के वामभाग में स्थापित कर और दीप-पात्र हाथ में लेकर १० बार देवता की आरती कर उसे देवता के दक्षिण-भाग में स्थापित कर दे।

इसके बाद साधक 'मूल' साङ्गायै सवाहनायै सालकारायै सायुधायै सपरिवारायै अमुकी देव्यै श्री पादुकां पूजयामि नमः—यह मंत्र पढ़कर गन्ध और पुष्प से तीन बार देवता की पूजा करे। फिर तीर्थपात्र एक हाथ में और तत्त्व-मुद्रा से दूसरे हाथ में शुद्धि-खण्ड लेकर 'मूल मंत्र' इदं मद्यं इमां शुद्धिं अमुकदेव्यै निवेद-यामि नमः—यह मंत्र पढ़कर उन दोनों को यंत्रराज पर छोड़ देवता का तर्पण करे।

यन्त्रराज के सामने या दाहने भूमि पर सामान्य अर्घ्य का जल छिड़ककर एक चौकोना मण्डल बनावे। उस पर भोज्य-पदार्थों के सहित नैवेद्य-पात्र रक्खे। फिर 'फट्' से जल छिड़क 'हुं' से अवगुण्ठन-मुद्रा करे और 'फट्' से उसकी संरक्षा करे। तब 'वं' से धेनु-मुद्रा दिखला कर उसे अमृतमय करे। फिर ७ बार मूल-मन्त्र का जप कर इस मन्त्र से देवता को मुद्रा से नैवेद्य अर्पित करे।

'मूलमंत्र' एतत् सर्वोपकरणान्वितं सिद्धान्नमिष्टं देवतायै निवेदयामि'—यह मंत्र पढ़कर 'शिवे हविरिदं जुषाण'[१]—इस मंत्र से जल छोड़कर नैवेद्य प्रदान करे।

इसके बाद (१) ॐ प्राणाय स्वाहा, (२) ॐ अपानाय स्वाहा (३) ॐ समानाय स्वाहा, (४) ॐ उदानाय स्वाहा, (५) ॐ व्यानाय स्वाहा, आदि मंत्र पढ़ता हुआ क्रम-पूर्वक प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान आदि मुद्रायें[२] दिखा कर देवता को भोजन करावे। फिर तीर्थ-पात्र देवता को अर्पित करे और आचमन के लिए जल देवे। तब 'श्रीपात्र' से देवता को तीन बार तर्पण करावे। इसके बाद मूल-मन्त्र पढ़ता हुआ साधक पाँच अञ्जलि पुष्प देवता के सिर, हृदय, मूलाधार-चक्र, चरण और सब अङ्गों को अर्पित करे।

आवरण-पूजा—इसके बाद आवरण-पूजन के लिए देवता की प्रार्थना करे। यथा—

१ सब उपकरणों से युक्त यह सिद्ध अन्न अमुक इष्ट देवता को अर्पित करता हूँ। हे शिवा, इस नैवेद्य को ग्रहण करो।

२ कनिष्ठा, अनामिक और अंगुष्ठ के मिलाने से प्राण; तर्जनी, मध्यमा, और अंगुष्ठ के मिलाने से अपान; चारों अँगुलियों और अंगुष्ठ के मिलाने से समान; अनामा, मध्यमा और अंगुष्ठ के मिलाने से उदान; तथा तर्जनी, अनामा, मध्यमा और अंगुष्ठ के मिलाने से व्यान मुद्रा बनती है।

हे आमुकी देवि आवरणं ते पूजयामि नमः।
इस तरह प्रार्थना कर वह आवरण-पूजा[1] करे।

आवरण पूजा के बाद साधक इष्ट-देवता को पञ्च पुष्पाञ्जलियाँ देकर इष्ट-देवता की भाँति पाद्यादि से सदाशिव की अर्चना करे।

इसके बाद साधक यथाविधि पशु का वलिदान[2] और हवन[2] करे। हवन के बाद साधक सिर में गुरु का, हृदय में देवता का और रसना में तेज-रूप मूल-मन्त्र का ध्यान करे। फिर गुरु-देवता और मन्त्र इन तीनों के तेज से एक हुई आत्मा का चिन्तन करे।

इष्ट-मन्त्र का जप—इसके बाद साधक मूल-मन्त्र को प्रणव से सम्पुटित कर (मूल-मन्त्र के आगे-पीछे ॐ लगा कर) सात बार जपे[3]। फिर उसे मातृकाओं से सम्पुट कर (अ आं इ ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं च छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भ मं यं रं ल वं शं षं सं हं लं क्षं मूल-मन्त्र क्षं लं हं सं षं शं वं लं रं यं म भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं झं जं छं चं ङं घं गं

१ प्रत्येक देवता की आवरण-पूजा भिन्न होती है। अतएव साधक अपने देवता के अनुसार आवरण-पूजा करे।

२ 'उत्तरार्द्ध' में इनकी विधियाँ देखो।

३ यह अशौच भंगजप है। इससे अशुद्धता दूर होती है।

खं कं अः अं औं ओं ऐं एं लॄं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं)
सात बार स्मरण करे[1] ।

फिर साधक अपने सिर[2] पर 'ह्रीं' बीज का १० बार, अपने मुख[3] में ॐ बीज का १० बार और हृदय[4] में फिर 'ह्रीं' बीज का ८ बार जप करे। यह जप कर यथाविधि वह प्राणायाम करे।

प्राणायाम कर चुकने पर साधक माला लेकर इस मन्त्र से उसकी पूजा करे। यथा–

माले माले महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥[5]

इस प्रकार पूजा करके श्रीपात्र के अमृत से मूल-मन्त्र के द्वारा साधक माला का तर्पण करे। फिर स्थिरचित्त होकर १००० या १०८ बार मूल-मन्त्र का जप करे। इसके उपरान्त वह फिर पूर्ववत प्राणायाम करे। प्राणायाम कर चुकने पर वह अपना

१ यह निर्वाणजप है।

२ यह कुल्लूकजप है।

३ यह मुखशोधनजप है।

४ यह सेतुजप है।

५ हे माला, हे माला, हे महान् माला, तू सब शक्तियों के स्वरूपवाली है। चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तुझमें न्यस्त है। अतएव तू मेरे लिए सफलता प्रदान करनेवाली हो।

तेज-रूप जपफल श्रीपात्र के द्रव्य और पुष्प आदि से इष्ट-देवता के बायें हाथ में अर्पित कर दे। जप-समर्पण इस मन्त्र से करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरी।[1]

इसके बाद साधक स्तोत्र, कवच और सहस्रनाम आदि का पाठ कर इष्ट-देवता की प्रदक्षिणा करे[2]। अन्त में साधक आत्मसमर्पण करे।

आत्म-समर्पण और विसर्जन—ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रतस्वप्न सुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिस्नया यत् कृतं यत् स्मृतं यदुक्तं तत् सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु मां मदीयं सकलं अमुक देवतायाः पादम्भोजेऽर्पयामि ॐ तत्सत्[3]—इस मंत्र से

१ हे महेश्वरी, गुप्त से गुप्त वस्तु को तू गुप्त रखनेवाली है। मेरे किये हुए जप को तू ग्रहण कर। हे देवी, तेरे प्रसाद से मुझे सफलता प्राप्त हो।

२ अर्थात् जो कुछ इसके पूर्व मैंने प्राण, बुद्धि, देह के अधिकार से जागते हुए, स्वप्न में या स्वप्न-रहित निद्रा में शब्द या कर्म या मन से, हाथों, पैरों, पेट या शिस्नेन्द्रिय से किया है, जो कुछ मुझे याद है या मैंने कहा है, वह सब मैं ब्रह्म को अर्पित करता हूँ। मैं अपने को और जो कुछ मेरा है वह सब अमुक देवता के चरण कमलों में अर्पित करता हूँ।

३ कालीकुल के साधक 'विशेष अर्घ्यपात्र' हाथ में लेकर प्रदक्षिणा करते हैं। फिर उस पात्र के द्रव्य को देवता के चरणों में

आत्म-समर्पण करने के बाद साधक देवता से प्रार्थना करे। यथा—

'मूलमन्त्र अमुकदेवता यथाशक्ति पूजितासि क्षमस्व।'

इसके बाद देवता का विसर्जन* करे। साधक संहार-मुद्रा से यन्त्रराज के ऊपर का फूल लेकर सूंघे और उसे अपने हृदय में रक्खे। इस प्रकार देवता को हृदय-कमल में विसर्जित करे।

फिर ईशान-कोण (उत्तर और पूर्व के बीच) में त्रिकोण मण्डल बना उसमें बचे हुए जल और पुष्प से 'ह्रीं निर्माल्यवासिन्यै नमः'—इस मन्त्र के द्वारा निर्माल्यवासिनी देवी की पूजा करे।

अन्त में ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि को यथाविधि नैवेद्य देकर साधकों-सहित महाप्रसाद को ग्रहण करे। प्रसाद ग्रहण करने के बाद मस्तक पर निर्माल्य-पुष्प रख यन्त्र में के पदार्थ-विशेष से ललाट पर तिलक करे। इस प्रकार साधक नित्यार्चन समाप्त करे।

अर्पित कर अपने आप को भी अर्पित करते हैं। अर्घ्य देवता के सिर में दिया जाता है, पर इस अवसर पर वह पैरों में अर्पित किया जाता है और यह विलोम अर्घ्य कहलाता है।

* श्रीकुल के साधक विसर्जन के पहले हवन और कवच आदि का पाठ करते हैं। यहाँ इनका उल्लेख काली-कुल के अनुसार यथा-स्थान किया गया है।

उत्तरार्द्ध

१—मुद्रा-लक्षण*

(१) अङ्कुशमुद्रा

ऋज्वीञ्च मध्यमां कृत्वा तर्जनी मध्यपर्वणि ।
सयोज्याकुञ्चयेत किञ्चित मुद्रं षाङ्कुशसंज्ञका ॥

मध्यमा को सरल भाव से फैलाकर उसके बीच के पोर पर तर्जनी को कुछ टेढ़ी करके रक्खे । यह मुद्रा 'अकुश' नाम की है ।

(२) अवगुण्ठनमुद्रा

सव्यहस्तकृतामुष्टिर्दीऽर्घाधोमुखतर्ज्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता ॥

बायें हाथ की मूठी बाँध कर तर्जनी को खूब फैला दे । तब उसे अधोमुख कर घुमावे । यह अवगुण्ठनमुद्रा कहलाती है ।

(३) धेनुमुद्रा

अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा च तर्जनी मध्या धेनुमुद्रामृतप्रदा ॥

* 'पूर्वार्द्ध' में जगह जगह मुद्राओं का उल्लेख हुआ है । उन सब मुद्राओं के लक्षण यहाँ 'तंत्रसार' से दिये गये हैं ।

दोनों हाथों की अँगुलियों को आमने-सामने एक दूसरे के बीच में डाले। फिर दोनों कनिष्ठाओं के अग्रभाग को दोनों अनामिकाओं के अग्रभाग पर रक्खे। इसी तरह दोनों तर्जनियों के अग्रभाग को दोनों मध्यमाओं के अग्रभाग पर रक्खे। इस तरह 'धेनुमुद्रा' बनती है। इसे दिखा कर पदार्थ अमृतमय किया जाता है।

(४) योनिमुद्रा

मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्ज्जनीभ्यां अनामिके।
अनामिकोर्द्धसंश्लिष्टं दीर्घमध्यमधोरधः॥
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यसेद् योनिमुद्रेयमीरिता।

दोनों कनिष्ठाओं को परस्पर मिलावे। दाहनी तर्जनी से बाईं अनामिका को और बाईं तर्जनी से दाहनी अनामिका के अग्रभाग को पकड़े। दोनों मध्यमाओं को फैला दे। इन दोनों के मूल-देश में दोनों अँगूठे स्थापित कर दे। इसे 'योनिमुद्रा' कहते हैं।

(५) आवाहिनीमुद्रा

हस्ताभ्यामञ्जलिं बद्ध्वानामिकामूलपर्वणि।
अंगुष्ठौ निःक्षिपेम् सेयं मुद्रा त्वावाहिनी स्मृता॥

दोनों हाथों की अंजलि बनावे। दोनों अनामिकाओं के मूल के पोरों पर दोनों अँगूठे स्थापित करे। यह 'आवाहनीमुद्रा' हुई।

(६) स्थापिनीमुद्रा

अधोमुखीत्वियं चेत्स्यात स्थापिनी मुद्रिका स्मृता।

इस आवाहनी को बनाकर इसे अधोमुख करें। यह 'स्थापनीमुद्रा' हुई।

(७) संनिधापिनी मुद्रा

उच्छ्रिताङ्गुष्ठमुष्ठयोश्च सयोगात् सन्निधापिनी॥

दोनों हाथों की मूठी बाँध कर अँगूठे खड़े कर दे। यह 'सन्निधापनी मुद्रा' हुई।

(८) संबोधिनीमुद्रा

अन्तः प्रवेशिताङ्गुष्ठा सैव सबोधिनी मता।

दोनों अगूठों को मूठी के भीतर कर मूठियों को अधोमुख करें। यह 'सम्बोधिनीमुद्रा' हुई।

(९) सम्मुखीकरणी मुद्रा

उत्तानमुष्टियुगला सम्मुखीकरणी मता।

सम्बोधिनीमुद्रा को उत्तान रूप में करने से 'सम्मुखीकरणी मुद्रा' बनती है।

(१०) तत्त्वमुद्रा

अंगुष्ठानामिकाभ्याञ्च वामहस्तस्य सर्वदा।

कथिता तत्त्वमुद्रेयं योजिता तर्पणे बुधैः॥

बायें हाथ के अँगूठे और अनामिका के योग से 'तत्त्वमुद्रा' बनती है। इस मुद्रा से तर्पण किया जाता है।

(११) मत्स्य-मुद्रा

दक्षपाणिपृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत् ।
अङ्गुष्ठे चालयेत सम्यक् मुद्रेयं मत्स्यरूपिणी ॥

दाहने हाथ की पीठ पर बायें हाथ को तल की ओर से स्थापित करे। इधर-उधर के दोनों अँगूठे हिलावे। इस प्रकार जो मुद्रा बनती है उसे 'मत्स्य-मुद्रा कहते हैं।

(१२) कूर्म या कच्छप-मुद्रा

वामहस्तस्य तर्ज्जन्या दक्षिणस्य कनिष्ठया ।
तथा दक्षिणतर्ज्जन्यां वामाङ्गुष्ठेन योजयेन ॥
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठ वामस्य मध्यमादिकाः ।
अंगुलीर्योजयेत पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे च ते कुर्याद्दक्षिणस्य करस्य च ॥
कूर्म्मपृष्ठसम कुर्याद्दक्षपाणिञ्च सर्वतः ।
कूर्ममुद्रेयमाख्याता देवताध्यानकर्मणि ॥

बायें हाथ की तर्जनी से दाहने हाथ की कनिष्ठा एवं दाहने हाथ की तर्जनी से बायें हाथ के अँगूठे से मिलावे, फिर दाहने हाथ के अँगूठे को उठा दे और बायें हाथ की अनामिका और मध्यमा को ले जाकर दाहने हाथ की पीठ पर जमा दे, फिर बायें हाथ के अँगूठे और तर्जनी के नीच के भाग में दाहने हाथ की मध्यमा और अनामिका को लाकर अधोमुख जमा दे। तब दाहने

हाथ की पीठ को कछुए की पीठ की तरह उठाये। यह मुद्रा देवता का ध्यान करते समय बनाई जाती है। इसका नाम 'कूर्ममुद्रा' है।

(१३) लेलिहान-मुद्रा

तर्जनी मध्यमानामाः समं कुर्यादधोमुखम्।
अनामायां क्षिपेद्वृद्धां ऋज्वीं कृत्वा कनिष्ठिकाम्।
लेलिहानम् मुद्रेऽयं जीवन्यासे प्रकीर्तिता॥

तर्जनी, मध्यमा व अनामिका को बराबर मिलाकर इन्हें अधोमुख करे। अनामिका से वृद्ध अंगुलि को पकड़. कनिष्ठा को सरल भाव में रक्खे। यह 'लेलिहान-मुद्रा' है और प्राण-प्रतिष्ठा के समय यह बनाई जाती है।

(१४) संहार-मुद्रा

अधोमुखं वामहस्तं ऊर्द्ध्वं दक्षिणहस्तकम्।
क्षिप्त्वाङ्गुलिः संयोज्य हस्तौ तु परिवर्तयेत्।
एषा संहारमुद्रा स्याद्विसर्जनविधौ स्मृता॥

बायाँ हाथ अधोमुख और दाहना हाथ ऊर्द्ध्व मुख करके दोनों हाथों की सब अँगुलियाँ एक दूसरे को पकड़लें। फिर दोनों हाथों को घुमाले। यह 'संहार-मुद्रा' है और देवता का विसर्जन करते समय यह बनाई जाती है।

२—षट्चक्र-व्यवस्था

नित्यार्चन में गृहस्थ-साधक को ध्यान, प्राणायाम, भूत-शुद्धि आदि करने पड़ते हैं। अतएव शरीरगत षट्चक्रों का यत्किञ्चित् ज्ञान उसके लिए परमावश्यक है। 'शाक्तानन्दतरंगिणी' के अनुसार उनका परिचय यहाँ दिया गया है—

मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं। इनमें दस मुख्य हैं और इन दस में भी तीन मुख्य है। ये इडा, पिंगला और सुषुम्ना हैं। इडा मेरु-दण्ड के वाम-भाग में स्थित है। यह शुक्ल-वर्ण और चन्द्ररूपिणी है, यह शक्तिरूपा है और मूर्तिमान अमृत है। पिंगला मेरु-दण्ड के दाहने स्थित है। यह पुंरूपा, सूर्यरूपिणी है, इसका वर्ण रक्त है। सुषुम्ना मेरुदण्ड की पोल में स्थित है। यह रक्त वर्ण है। यह मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक चली गई है।* यह सर्वतेजोमयी और वह्निरूपिणी है। सुषुम्ना के भीतर चित्रा नाम की नाड़ी है जो करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा से पूर्ण है। वह सर्वदेवमयी है। इस चित्रा के भीतर ब्रह्मनाडी नाम की एक और नाड़ी है। यह नाड़ी सूर्यस्वरूपिणी है और मृणाल के तन्तु के सदृश है। इसी लिए सुषुम्ना त्रिगुणात्मिका है। मेरु-

*ये तीनों नाड़ियाँ गुह्य के मूल-देश में मिलती हैं। यहाँ से ये शरीर के ऊपर के भाग को गई हैं। सुषुम्ना मेरुदण्ड के बीच से होकर गई है। शेष दोनों मेरुदण्ड को लपेट में लेती हुई जाती हैं।

दण्डगत इस सुषुम्ना में ही यथास्थान क्रम-पूर्वक छः चक्र स्थित हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) मूलाधार[१]—यह मूल स्थान का चक्र है। यह चार दल का है। इसका वर्ण अतिरक्त है। चारों दलों में—वं, शं, षं, सं—ये रक्त वर्ण के चार अक्षर स्थित हैं। इस कमल के बीज-कोश में एक त्रिकोण है[२]। यह त्रिकोण[३] इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक है। इस त्रिकोण में कन्दर्प वायु व्याप्त है। इसके बीच में स्वयम्भू लिंग सछिद्र स्थित है[४]। यह श्याम वर्ण का है। इस लिंग पर विद्युतलताकार कुण्डलनी[५] साँप की भाँति लिपटी हुई है। वह उक्त लिंग पर तीन फेरे से लिपटी हुई उसके ब्रह्मद्वार के मुख को अपने मुख से ढँके हुए सोती रहती है। जाग्रत होने पर छिद्र के मुख अर्थात ब्रह्मद्वार से वह ऊपर के

१—यह चक्र गुह्य के ऊपर सुषुम्ना के मुँह पर स्थित है।

२—यहाँ एक समचतुष्कोण भी है जो पीत वर्ण है और जिसके भीतर लं बीज (पृथ्वी-तत्त्व) अंकित है जो विद्युत्प्रभापूर्ण है।

३—यह त्रिकोण रक्त वर्ण है।

४—यह स्वयम्भू लिङ्ग अधोमुख है।

५—कुण्डलिनी देवी का ध्यान। यथा—ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भुलिङ्गवेष्टिनीम्। श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्। विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्वगामिनीम्॥

चक्रों से होती हुई ब्रह्मरन्ध्र को आती-जाती रहती है। यह चक्र मेरु-दण्ड में अधोमुख स्थित है।

(२) स्वाधिष्ठान[१]—गुह्य के मूल-देश में यह चक्र स्थित है। यह छः दल का है। इसके दलों में—बं, भं, मं, यं, रं, लं—ये वर्ण[२] अंकित हैं।[३]

(३) मणिपूरक—यह चक्र नाभि-देश के मूल में स्थित है। इसके दस दलों में—डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं—ये वर्ण अंकित है[४]।

(४)—अनाहत—यह चक्र हृदय-देश में स्थित है। यह बारह दल का कमल है। इसका रंग बन्धूक के पुष्प का है। इसके दलों पर—कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं—ये वर्ण अंकित हैं। ये अक्षर सिन्दूर रंग के हैं। इसके बीज-कोश में (विद्युत रूपी एक त्रिकोण[५] है, जिसके बीच में) हजारों सूर्य की प्रभावाला

१—इसका वर्ण सिन्दूर के समान लाल है।

२—ये वर्ण विद्युत् के समान दीप्तिमान हैं।

३—इस कमल के बीज-कोश में अर्धचंद्र के रूप में वरुण-बीज वं अङ्कित है। इसका वर्ण चंद्रमा के समान श्वेत है।

४—इस कमल का श्यामघन के समान रंग है। इसमें त्रिकोण के रूप में अग्नि-तत्त्व है, जिसका रं बीज उसमें अङ्कित है।

५—इस चक्र के मध्य में वायु-तत्त्व स्थित है, जिसका यं बीज भी वहाँ अंकित है। यह धुएँ के रंग का है।

एक वाणलिङ्ग[1] स्थित है।

(५)—विशुद्ध—कण्ठ-देश में यह मनोहर चक्र स्थित है। यह सोलह दल का कमल है और धूम्रवर्ण है। इसके दल—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—इन वर्णों[2] से युक्त हैं। इस कमल के वीजकोश में श्वेत वर्ण का गोलाकार आकाशतत्त्व है[3]।

(६)—आज्ञा[4]—यह चक्र भौंहों के बीच में है और दो दलों का है। इसके दलों में—ह, क्ष—ये दो वर्ण अंकित हैं। इसके वीजकोश में इतर नाम का महालिङ्ग[5] स्थित है, जिसका वर्ण स्वर्ण के समान है।

आज्ञा-चक्र के ऊपर (कैलाश चक्र, उसके बाद बोधिनी चक्र और उसके बाद) अधोमुखी सहस्रदलकमलचक्र है। इस चक्र के मध्य में अकथ आदि की तीन रेखाओं का त्रिकोण है।[6]

१—यह प्रदीप्त स्वर्ण के रंग का है।

२—इन अक्षरों का रंग लाल है।

३—जिसमें हं वीज अंकित है।

४—इस कमल का रंग चन्द्रमा के समान है।

५—यह शिवलिंग त्रिकोण के भीतर स्थित है। यहाँ प्रणव वीज अंकित है।

६—यह त्रिकोण चन्द्रमण्डल के भीतर स्थित है।

इसके तीनों कोणों में द, ल, च वर्ण हैं। इसके बीच में सृष्टि-स्थितिलयात्मक पर विन्दु है।*

षट्चक्रों का जो विवरण यहाँ दिया गया है वह अपर्याप्त है। इससे केवल उनकी झलक भर दिखाई देती है। इस विषय का सम्बन्ध भी केवल योगी साधकों से रहता है। तान्त्रिक योग का यह विशेष विषय भी है और तंत्रों में इसका विशद वर्णन किया गया है। यह उच्च श्रेणी के साधकों के ही परिज्ञान की वस्तु है। परन्तु साधारण साधक अपनी कुछ क्रियाओं के लिए ही इनका ज्ञान रखते हैं। कम से कम इन चक्रों के स्थानों तथा उनके स्वरूप आदि का ज्ञान तो प्रत्येक साधक को होना चाहिए। ऊपर के इसके सक्षिप्त परिचय से इस उद्देश की सिद्धि होगी।

---

* इसके दलों का रंग लाल है। वर्णमाला के पचासों वर्ण इसके दलों में अंकित हैं। इनका रंग श्वेत है। ये वर्ण बीस बार से सब दलों में अंकित हुए हैं। उसके वीज-कोश में हंसः अंकित है। इसके ऊपर गुरु है जो स्वयं परमशिव है। गुरु के ऊपर सूर्य और चन्द्र-मण्डल हैं। इनके ऊपर महावायु है। महावायु के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है। चन्द्रमण्डल में विद्युत् की प्रभा का त्रिकोण है।

३—चक्रार्चन-विचार

साधकेभ्यश्च शक्तिभ्यो दद्यात् निर्माल्यचन्दनम् ।
निवेशेच्चक्ररूपेण पंक्त्याकारेण वा यथा ॥ १ ॥
शक्तियुक्तो वसेद्वापि युग्म युग्म विधानतः ॥ २ ॥
ततः पुष्पं समादाय गुरोः पात्रे निवेदयेत् ।
गुरवे च निवेद्याथ शक्त्यै दत्वा स्वयं हरेत् ॥ ३ ॥
साक्षाद् यदि गुरुर्न स्यात् तदा तोये विसर्जयेत् ॥ ४ ॥

अर्थात् साधकों और शक्तियों को चक्रार्चन का निर्माल्य देकर तथा उनके माथे में चन्दन लगाकर चक्राकार या पंक्त्याकार में बैठे[1] ॥१॥ साधक शक्ति के सहित एक आसन में या पास पास भिन्न भिन्न आसनों पर बैठें ॥२॥ तब पुष्प लेकर गुरु-पात्र में छोड़े और उस पात्र को गुरु को प्रदान करे, तब शक्ति-पात्र शक्ति को देकर अपना पात्र[2] ग्रहण करें ॥३॥ अगर गुरु उप-

---

१ परन्तु प्रचलित प्रणाली यह है कि पूजा हो जाने पर केवल पुरुष साधक ही चक्रार्चन में शामिल होते हैं। शक्तियाँ पृथक् दूसरे स्थान में बैठती हैं। जब पुरुषों का तर्पण आरम्भ होता है तब उधर कोई लड़का जाकर शक्तियों की पूजा करता है और उनको तर्पण करा देता है। गृहस्थ साधकों के यहाँ शक्तियों का चक्रार्चन से केवल इतना ही सम्बन्ध रक्खा गया है ।

२ परन्तु चाल यह है कि उपस्थित वीरों को पात्र देकर अन्त में

पानपात्रं प्रकुर्वीत न पञ्चतौलिकाधिकम् ।
आधारोपरि संस्थाप्य शुद्धिपात्रस्य दक्षिणे ॥ ५ ॥
महाप्रसादमानीय पात्रेषु परिवेशयेत ।
स्वयं वा भ्रातृपुत्रैर्वा ज्येष्ठानुक्रमतः सुधीः ॥ ६ ॥
पानपात्रे सुधा देया शौद्ध्ये शुद्ध्यादिकानि च ।
ततः सामयिकैः सार्द्धं पानं भोजनमाचरेत ॥७॥

महानिर्वाण ६ उल्लासे

स्थित न हो तो उस पात्र का जल में विसर्जन कर दे ॥ ४॥ पानपात्र इतना बड़ा हो कि पाँच तोले से अधिक द्रव्य उसमें न आवे। उसे शुद्धि-पात्र के दाहने आधार पर रक्खे ॥५॥ अच्छी बुद्धिवाला साधक चाहे स्वयं, चाहे अपने भाई के पुत्रों के द्वारा साधकों को जेठे के क्रम के अनुसार महाप्रसाद (पवित्र भोजन) परोसे* ॥६॥ पानपात्र में तीर्थ और शुद्धिपात्रों में शुद्धि आदि पदार्थ प्रदान करे। तब उपस्थित साधकों के साथ पान और भोजन करे ॥७॥ (महानिर्वाण)

तर्पण-क्रिया—पान-पात्रों के तीर्थसहित यथाक्रम वितरित होने पर प्रत्येक साधक अपने पात्र को मुद्रा-पूर्वक ग्रहण कर

साधक अपना पात्र लेता है।

* परन्तु पद्धति इस तरह है कि पान-पात्र और शुद्धि-खण्ड वितरित हो जाते हैं, साधक तर्पण करते हैं, जब चार पात्र हो जाते हैं तब महाप्रसाद परोसा जाता है।

शुद्धि-पात्र के दाहने आधार पर स्थापित करे। इसके बाद वह तर्पण करे।

साधक तत्त्व-मुद्रा से शुद्धि-खण्ड लेकर उससे अपने पात्र के तीर्थ को अपने शिरोदेश में अभिषिंचन कर अपने गुरौघ का तर्पण करे। यथा—

ऐं सपत्नीकं गुरुं तर्पयामि नमः—से गुरु का, ऐं सपत्नीकं परमगुरुं तर्पयामि नमः—से परम गुरु का, ऐं सपत्नीक परापर-गुरुं तर्पयामि नमः—से परापर गुरु का, ऐं सपत्नीकं परमेष्ठी गुरुं तर्पयामि नमः—से परमेष्ठी गुरु का, क्रमपूर्वक तीन तीन बार भक्ति-भाव के साथ तर्पण करे। यदि गुरुपादुका-मंत्र प्राप्त हो तो अपने गुरु का उसी मंत्र से तर्पण करे। यदि नाम ज्ञात हों तो 'सपत्नीकं' शब्द के बाद उनकी योजना करे।

फिर साधक हृदयदेश में आनन्दभैरव का ध्यान करता हुआ और 'हसक्षमलवरयूँ आनन्दभैरवाय वषट् तर्पयामि स्वाहा'—यह मन्त्र पढ़ता हुआ तीन बार आनन्दभैरव का तर्पण करे। उसी तरह वह तीन बार आनन्दभैरवी का 'सहक्षमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वौषट् तर्पयामि स्वाहा'—इस मन्त्र से तर्पण करे। फिर वह हृदय में अपने इष्ट-देवता का ध्यान करता हुआ मूल-मंत्र के साथ देवता का नाम उच्चारण कर 'सायुधां सवाहनां सपरिवारां तर्पयामि स्वाहा' कहे। इस मन्त्र से हृदय-देश में वह तीन, पाँच या सात बार इष्ट-देवता का तर्पण करे।

तत्त्व-शुद्धि—इस प्रकार तर्पण कर चुकने के बाद साधक तत्त्व-शुद्धि करे। यथा—

पात्र के तीर्थ से साधक अपनी हथेलियाँ शुद्ध करे। फिर वह दाहनी हथेली में त्रिकोण, और उसके बाहर वृत्त-मण्डल बनावे। इस मण्डल के दक्षिण, उत्तर, सम्मुख और मध्य में छोटे छोटे शुद्धिखण्ड रक्खे। तब वह बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और अँगूठे से सामने के शुद्धिखण्ड को उठा कर 'ह्रीं श्रीं शिवशक्तिसदाशिवे विद्याकलात्मने आत्मतत्त्वेन स्थूल-देह शोधयामि स्वाहा'—यह मंत्र पढ़ता हुआ उसे खा जाय। फिर वह बायें रक्खे हुए शुद्धि-खण्ड को उठावे और 'ह्रीं श्रीं माया-कलानियतिकलात्मशुद्धविद्यारागापुरुषात्मने विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा'—यह मंत्र पढ़ कर खा जाय। इसके बाद दाहनी ओर के शुद्धि-खण्ड को उठावे और 'ह्रीं श्रीं प्रकृत्यहङ्कार-बुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायुपस्थशब्दस्पर्श-रूपरसगन्धाकाशवायुतेजःसलिलभूम्यात्मने शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा'—यह मंत्र पढ़ कर खा जाय। अन्त में मध्य के शुद्धिखण्ड को उठावे और 'ह्रीं श्रीं शिवशक्तिसदाशिवे विद्याकलात्मने मायाकलानियतिकलात्मशुद्धविद्यारागापुरुषात्मने। प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुरसनाघ्राणवाक्पाणिपादपायुप-स्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुसलिलभूम्यात्मने सर्वतत्त्वेन स्थूलसूक्ष्मपरदेहं शोधयामि स्वाहा' यह पढ़ कर खाय।

इस प्रकार तत्त्व-शुद्धि कर चुकने पर साधक व्यापक न्यास करे। फिर वह पात्र को बायें हाथ से उठा और दाहने हाथ में शुद्धि-खण्ड ले आगे के मन्त्र से सुरा देवी का ध्यान करे—

समुद्रे मथ्यमाने तु क्षीराब्धौ सागरोत्तमे।
तत्रोत्पन्ना सुरा देवी कन्यका रूपधारिणी॥
गोक्षीरसदृशाकारा कुलामृतसमुद्भवा।
अष्टादशभुजैर्युक्ता नीराजायतलोचना॥
आनन्दशिखरे जाता आनन्दश्च महेश्वरः।
तयोर्योगे भवेद् ब्रह्मा विष्णुश्च शिव एव च॥
तस्मादिमां सुरां देवीं पूर्णोऽहं तां पिबाम्यहम्।

इस प्रकार सुरादेवी का ध्यान कर चक्रेश्वर के पात्र-वन्दना करने पर उसका अभिवादन कर और उनकी अनुमति ले 'जुहोमि' कहकर ध्यान-द्वारा कुण्डलिनी को अपनी जीभ पर ला पात्रस्थ तीर्थ का पान करे और यह समझे कि कुण्डलिनी-शक्ति को ही उसने पान कराया है, खुद नहीं पान किया है। इसी तरह प्रत्येक पात्र का पान करे। तदनन्तर प्रसाद को ग्रहण करे और यह सब करते समय चक्रेश्वर की अनुमति पाने पर समयानुकूल स्तोत्रपाठ भी करे। इस सम्बन्ध में यह विधान है—

सशब्दं न पिबेद् द्रव्यं न बिन्दुं पातयेदधः।
विना चर्व्वेण यत्पानं केवलं विषवर्द्धनम्॥ १॥
एकासने निविष्टा ये भुञ्जानश्चैकभाजने।

एकपात्रे पिबेद् द्रव्यं ते यान्ति नरकं किल ॥ २ ॥
उच्छिष्टं न स्पृशेच्चक्रे कुलद्रव्याणि सर्वथा ।
बहिः प्रक्षाल्य च करौ कुलद्रव्याणि दापयेत ॥ ३ ॥
सशब्दं न उद्धरेत पात्रं तथैव च न पूरयेत ।
रिक्तपात्रं न कुर्वीत न पात्रं भ्रामयेद् सदा ॥ ४ ॥
कौलावली

साधकानां गृहस्थानां पञ्चपात्रं प्रकीर्तितम ।
अतिपानात कुलीनानां सिद्धिहानिः प्रजायते ॥५॥
यावन्न चालयेद् दृष्टिं यावन्न चालयेत्मनः ।

अर्थात द्रव्य का पान करने में शब्द न हो, द्रव्य जमीन पर गिरने भी न पावे और बिना पहले से कुछ खाये उसका पान करना विषकारक ही होगा ॥ १ ॥ जो एक आसन पर बैठते हैं, एक ही पात्र में खाते हैं और एक ही पात्र में पान करते हैं वे निश्चय ही नरक को जाते हैं ॥ २ ॥ जूँठे हाथ से कोई कुल-वस्तु चक्र में न छुए। बाहर जाकर हाथ धो आये तब आकर कुल-द्रव्यों का वितरण करे ॥ ३ ॥ न तो पान करने में शब्द हो और न पात्र भरने में ही शब्द हो। पात्र को एकदम खाली भी न करे—प्रत्येक बार सब का सब न पी जाया करे। पात्र को हाथ में लेकर घुमावे भी नहीं ॥ ४ ॥ (कौलावली) गृहस्थ साधकों को केवल पाँच पात्र करने चाहिए। अधिक पान करने से कौलों की सिद्धि की हानि होती है ॥ ५ ॥ जब तक दृष्टि चलायमान न हो,

तावत् पानं प्रकुर्वीत् पशुपानमतः परम् ॥ ६ ॥

महानिर्वाण षष्ठ उल्लासे

स्नेहाद्भयादानुरक्त्या पशूंश्चक्रे प्रवेशयन ।
कुलधर्मान् परिभ्रष्टो वीरोपि नरकं व्रजेत् ॥ ७ ॥
वर्णाभिमानाच्चक्रे तु वर्णभेदं करोति यः ।
स याति घोरनिरयमपि वेदान्तपारगः ॥ ८ ॥

महानिर्वाणे अष्टम उल्लासे

जब तक मन चञ्चल न हो, तभी तक पान करना चाहिए। इसके परे जाना पशुपान होगा ॥ ६ ॥ (महानिर्वाण ६ उल्लास) स्नेह, भय, अनुरक्ति से यदि कोई वीर पशु को चक्रार्चन में शामिल करता है तो वह वीर कुल-धर्म से भ्रष्ट हो जाता है और नरक को गमन करता है ॥ ७ ॥ वर्ण के अभिमान से यदि कोई चक्र में वर्ण-भेद करता है तो वह चाहे कितना ही वेदान्त का ज्ञाता हो, घोर नरक को जायगा ॥८॥ (महानिर्वाण ८ उल्लास)

४—पञ्चतत्त्व-निरूपण

चण्डिकां पूजयेद् यस्तु बिना पञ्च मकारकैः ।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशोधनम ॥१॥
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रामैथुनमेव च ।
मकारपञ्चमं देवि देवताप्रीतिदायकम ॥२॥

कौलावली

मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि ।
स्त्रीभिः सार्द्धं महासाधुरर्चयेद् जगदम्बिकाम ॥३॥

कामाख्यातंत्रे ५ पटले

या सुरा सर्वकार्येषु कथिता भुवि मुक्तिदा ।
तस्या नाम भवेद्देवि तीर्थं पानं सुदुर्लभम ॥४॥

समयाचारे

अर्थात महादेव कहते हैं—जो लोग बिना पञ्च मकारों के देवी की पूजा करते हैं उनकी आयु, विद्या, यश और धन—इन चार बातों का नाश होता है ॥१॥ हे देवी, मद्य. मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन ये पाँचों मकार देवता के लिए प्रीतिदायक हैं ॥२॥ (कौलावली) साधु पुरुष मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा तथा मैथुन एवं स्त्री के साथ जगज्जननी का पूजन करे ॥३॥ (कामाख्या-तंत्र) जो मदिरा इस संसार में सब कामों में मुक्ति देनेवाली। कही जाती है, हे देवी. उसका नाम तीर्थ है, जिसका पान करना

येन केन समुत्पन्ना येन केनाहृतापि वा ।
नात्र जातिविभेदोस्ति शोधिता सर्वसिद्धिदा ॥५॥
महानिर्वाण (६ उल्लासे)

शूद्राणां भक्ष्ययोग्यानां यन्मांसं देवनिर्मितम ।
वेदमन्त्रेण विधिवत् प्रोक्ता सा शुद्धिरुत्तमा ॥६॥
समयाचार

मांसन्तु त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम ।
यस्मात तस्मात् समानीतं येन तेन विघातितम ॥७॥
तत्सर्वं देवताप्रीत्यै भवेदेव न संशयः ॥८॥
महानिर्वाणे

माङ्गल्यजननाद्देवि संविदानन्ददानतः ।

दुर्लभ है ॥४॥ (समयाचार) किसी ने भी उसे बनाया हो और कोई भी उसे ले आया हो, उसके सम्बन्ध में जाति-पाँति का विचार नहीं है। शुद्ध की जाने पर वह सब सिद्धियाँ देनेवाली हो जाती है ॥५॥ (महानिर्वाण) शूद्रों के भक्ष्य-योग्य देवताओं-द्वारा निर्मित जो मांस वेदमंत्र से विधिपूर्वक शुद्ध हो जाता है उसका नाम शुद्धि है ॥६॥ (समयाचार) मांस तीन प्रकार का कहा गया है। एक जलचर, दूसरा भूचर छाग आदि, तीसरा खेचर अर्थात पक्षी। कोई भी ले आया हो और किसी ने भी मारा हो, वह सब देवता के लिए प्रिय होगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥७॥ मगलकारी होने से तथा मद्य का आनंद प्रदान

सर्वदेवप्रियत्वाच्च मांस इत्यभिधीयते ॥९॥

कुलार्णवे ५ खं० १७ उ०

मायामलादिशमनान्मोक्षमार्गनिरूपणात् ।

अष्टदुःखादिविरहान्मत्स्येति परिकीर्तितः ॥१०॥

कुलार्णवे ५ खं १७ उ०

पृथुकास्तण्डुला भृष्टा गोधूमचणकादयः ।

तस्या नाम भवेद्देवि मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी ॥ ११ ॥

समयाचारे द्वितीयपटलं

मांसमीनश्च मुद्रा च फलमूलानि यानि च ।

सुधादाने देवतायै संज्ञैषां शुद्धिरीरिता ॥ १२ ॥

महानिर्वाण ६ उल्लासः

शेषतत्त्वं महेशानि निर्वीर्ये प्रबले कलौ ।

करने से एवं सब देवताओं को प्रिय होने से ही इसका मांस नाम हुआ है ॥९॥ (कुलार्णव) माया के मल को दूर करने से, मोक्ष का मार्ग बतलाने से और आठों दुखों के जाल से मुक्त रखने से इसका मत्स्य नाम पड़ा है ॥१०॥ (कुलार्णव) चावल, गेहूँ, चना आदि के बनाये हुए भोज्य पदार्थों का नाम मुद्रा हुआ। मुद्रा-तत्त्व मुक्ति का देने वाला है॥ ११ ॥ (समयाचार) देवता के लिए मद्य-प्रदान के समय मांस, मत्स्य, मुद्रा और फल-मूल आदि पदार्थ शुद्धि कहलाते हैं॥ १२ ॥ (महानिर्वाण) हे महेश्वरी, इस वीर्य-हीन प्रबल कलिकाल में

स्वकीया केवला ज्ञेया सर्वदोषविवर्जिता ॥ १३ ॥

महानिर्वाण ६ उल्लासः

पञ्चमं देवि सर्वेषु मम प्राणप्रियं भवेत ।
पञ्चमेन विना देवि चण्डीमंत्रं कथं जपेत ॥ १४ ॥

कुलार्णवे पू० खं० १७ उल्लासः

प्रथमं तु भवेन्मद्यं मांसश्चैव द्वितीयकम् ।
मत्स्यश्चैव तृतीयं स्यात् मुद्रा चैव चतुर्थिका ॥ १५ ॥
पञ्चमं पञ्चमं विद्यात पञ्च ते नामतः स्मृताः ॥ १६ ॥

समयाचारे २ पटले

पाँचवाँ तत्त्व अपनी पत्नी को ही समझना चाहिए जो सर्वथा दोष-रहित होती है ॥ १३ ॥ (महानिर्वाण) हे देवी, सब तत्त्वों में पंचम तत्त्व मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है । हे देवी, पञ्चम तत्त्व के बिना देवी की साधना ही नहीं करनी चाहिए ॥ १४ ॥ (कुलार्णव) मद्य 'प्रथम', मांस 'द्वितीय', मत्स्य 'तृतीय', मुद्रा 'चतुर्थी' और पञ्चम 'पञ्चम' कहलाता है । १५-१६ ॥ (समयाचार)

५ पञ्चम-विधान

सर्वपीठमयी* शक्तिः सर्वदेवस्वरूपिणी ।
सर्वमन्त्रमयी शक्तिश्चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥१॥
शक्तौ मनुष्यबुद्धिन्तु यः करोति वरानने ।
न तस्य मन्त्रसिद्धिः स्याद्विपरीतफल लभेत ॥ २ ॥

साधक पहले—ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुँ फट् स्वाहा—इस मंत्र से शय्या पर त्रिकोण बनावे । उस पर 'ॐ ह्रीं आधारशक्तये कमलासनाय नमः'—से आधारशक्ति की मानसिक भाव से पूजा करे। फिर बायें हाथ पर तीन बार 'फट्' मन्त्र से फटकार कर और चुटकी बजा कर दिग्बन्धन करे। तब शय्या को नमस्कार करे। यथा—

ॐ शय्ये त्वं मृतरूपासि साधनीयासि साधकैः ।
अतोऽत्र जप्यते मन्त्रो ह्यस्माकं सिद्धिदा भव ॥

इसके बाद साधक यथाशक्ति मूलमन्त्र का जप करे।

जप के बाद साधक शक्ति को बुलावे । अगर वह अदीक्षित हो तो उसके कान में तीन बार 'ह्रीं' बीज सुनावे । फिर उसके

---

* शक्ति सर्वपीठमयी है, वह सर्वदेवस्वरूपिणी है, वह सब मन्त्र-मयी है और वह धर्मार्थकाममोक्ष की देनेवाली है ॥१॥ शक्ति में जो कोई मनुष्य-भाव रखता है उसके मंत्र की सिद्धि नहीं होती, बरन विपरीत फल प्राप्त होता है ॥२॥

उपटन लगाकर स्नान करावे, सुगन्धित तेल लगाकर उसके बाल सँवारे और रक्त वस्त्र पहना कर उसे पुष्प-शैय्या पर बिठावे। फिर सामान्यार्घ्य-पात्र के जल से—ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रो कुरु मम शक्तिं कुरु कुरु स्वाहा—यह मंत्र पढ़कर उसके सिर का अभिषिञ्चन करे।

इस प्रकार शक्ति का संशोधन कर शक्ति का षडङ्गन्यास, मातृकान्यास तथा वीज-न्यास आदि न्यास यथा स्थान करे।

* फिर शक्ति की अनुमति लेकर उसे ताम्बूल खिलाकर गुह्य पर 'ऐं' वीज का शत वार जप करे। फिर शक्ति को गौरी की और अपने को शिव की भावना कर मूलमंत्र का उच्चारण कर मातृमुख में पितृमुख को अर्पित करे। वह प्रत्येक आहुति में—

ॐ धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुवा।
सुषुम्ना वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम्॥

यह मन्त्र पढ़ता जाय। वह शिव-शक्ति की भावनामय होकर अक्षुब्ध और स्थिर मन रहे और मातृका-मंत्र का यथाशक्ति जप करे। अन्त में—

(मूलमंत्र) ॐ प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी सुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् स्वाहा—इस मन्त्र से शुक्रत्याग करे। (प्राणतोषणी)

* यदि मद्यादि के साथ शक्ति का शोधन तथा पूजन हो चुका हो तो केवल शय्या-शोधन करके आगे की क्रिया करे।

६ पशुबलि[१]

साधक श्रेष्ठ लक्षणवाले नीरोग पशु को देवी के सम्मुख स्थापित करके 'फट्' मंत्र से उस पर जल छिड़क कर उसका प्रोक्षण करे, फिर धेनुमुद्रा दिखाकर 'वं' वीज-मंत्र का उच्चारण कर उस पशु का अमृतीकरण करे। इसके बाद 'छागाय[२] पशवे नमः'—इस मन्त्र से जल, सिन्दूर, पुष्प, गन्ध और नैवेद्य के द्वारा पशु की पूजा करे। फिर साधक पशु के दाहने कान में तीन बार पाशविमोचिनी गायत्री-मन्त्र का जप करे। यथा—

पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात।

फिर साधक खड्ग लेकर 'हुँ' मन्त्र का उच्चारण करके खड्ग के अग्रभाग में 'ॐ वागीश्वरीब्रह्मभ्यां नमः' से सरस्वती और ब्रह्मा

---

१ मृगश्छागश्च मेषश्च लुलापः शूकरस्तथा।
शल्लकी शशको गोधा कूर्म्मः खड्गी दश स्मृता॥
अन्यानपि पशून् दद्यात् साधकेच्छानुसारतः।

महानिर्वाणे षष्ठ उल्लासे

अर्थात् हिरन, बकरा, मेढ़ा, भैंसा, सूअर, शल्लकी (साही), शशा, गोधा, कछुआ और गैंड़ा ये बलि योग्य दस मुख्य पशु हैं। परन्तु साधक दूसरे पशुओं की भी इच्छानुसार बलि दे सकता है।

२ यहाँ जिस पशु की बलि दे उसका उल्लेख होना चाहिए।

की, 'ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः' से लक्ष्मी और नारायण की और मूल-देश में 'ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः' से उमा और महेश्वर की पूजा करे। फिर 'ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुताय खड्गाय नमः' इस मन्त्र से खड्ग की पूजा करे। इसके बाद यह महावाक्य पढ़कर जल छोड़कर पशु का उत्सर्ग करे—

विष्णुः ॐ तत्सत् ॐ अद्यामुकमासे अमुकपक्षे अमुक-तिथौ अमुकराशिस्थिते भास्करे समस्ताभीप्सितपदार्थसिद्धिकामः अमुकगोत्रः अमुकशर्माहमिष्टदेवतायै इमं पशुं सम्प्रददे।'[1]

इस प्रकार सङ्कल्प पढ़कर जल छोड़कर 'यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम्'[2] यह वाक्य कहे। फिर पशु को पृथिवी पर खड़ा करके भक्त साधक तीक्ष्ण प्रहार से पशु का वध करे। भ्राता, भतीजे, सुहृद् या सपिण्ड से पशु का वध करावे या खुद करे।

फिर—एष कवोष्ण रुधिरबलिः ॐ वटुकेभ्यो नमः[3]—यह

१ अर्थात् आज अमुक महीने, अमुक पक्ष, अमुक तिथि, अमुक राशि में स्थित सूर्य के दिन सब इच्छित पदार्थों की प्राप्ति की कामना से अमुक गोत्र में अमुक शर्मा देवता के लिए इस पशु को विधिपूर्वक अर्पित करता हूँ।

२ अर्थात् विधि के अनुसार तुम्हें समर्पित हो।

३ अर्थात् यह गरम रक्त की बलि वटुक के लिए है।

मन्त्र पढ़कर वटुक का गरम रुधिर की बलि देवे। फिर—एषः सप्रदीपशीर्षबलिः ॐ ह्रीं देव्यै नमः[२]—यह मन्त्र पढ़कर मुण्ड पर प्रज्वलित कर्पूर रख कर देवी को मुण्ड का बलिप्रदान करे।

पितृदेवादि यज्ञेषु वैध हिंसा विधीयते।
हन्यादेकप्रहारेण स्वयं वा चान्यतोऽपिवा॥
यद्यप्येकेन घातेन बलिच्छेदो न जायते॥
तद्वद् व्याप्य च महान कर्तुर्हानिः पदे पदे॥
तच्छान्तये जपेद् विद्यां तारा देव्याः सहस्रकम।
सहस्रं जुहुयान्मांसैर्दद्याद्वा स्वर्णमाषकम॥
रुधिरं तत्तुपार्वत्यै न तु देयं कदाचन।
बलिमन्यं समादाय भगवत्यै निवेदयेत॥

अर्थात पितृमेध तथा देवयज्ञमें हिंसा विहित है। स्वयं करे या किसी दूसरे से बलिदान करावे और एकही प्रहार में पशु का हनन करे। यदि एक प्रहार में बलि का शिरच्छेदन न हो तो कर्ता को उस वर्ष पद पद पर हानि उठानी पड़ेगी। उसकी शान्ति के लिए तारा का मंत्र एक हजार जपे और उसी मंत्र से एक हजार बार मांस का हवन करे अथवा एक माशा सोना दान करे। उस पशु का रक्त देवी को न अर्पित करे, किन्तु दूसरा पशु लाकर भगवती को अर्पित करे।

---

२ अर्थात् यह दीपयुक्त मुण्ड की बलि देवी के लिए है।

७ संक्षेप होम-विधि

साधक अपने दाहने एक हाथ लम्बी-चौड़ी बालू की वेदी बनावे। उसे वह मूलमन्त्र पढ़ता हुआ दिव्य दृष्टि से देखे। फिर 'फट्' मंत्र से कुश के एक दर्भ से ताड़न कर 'फट्' मंत्र से ही उसका सामान्यर्घ्य से प्रोक्षण करे। तब 'हुं' मंत्र से अवगुंठनमुद्रा-द्वारा वेदी का अवगुण्ठन करे। अनन्तर 'अमुकदेवतास्थण्डिलाय नमः'[1]—इस मंत्र से वेदी की गन्ध और पुष्प से पूजा करे।

इसके बाद साधक वेदी पर पश्चिम से पूर्व को तीन खड़ी रेखायें खींचे। इसी प्रकार दक्षिण से उत्तर को तीन आड़ी रेखायें खींचे। फिर वह खड़ी रेखाओं पर दाहनी ओर से प्रत्येक पर—ॐ मुकुन्दाय नमः, ॐ ईशाय नमः, ॐ पुरन्दराय नमः—इन मंत्रों से विष्णु, शिव और इन्द्र की पूजा करे। इसके बाद आड़ी रेखाओं पर—ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ वैवस्वताय नमः, ॐ इन्दवे नमः—इन मंत्रों से ब्रह्मा, वैवस्वत और चन्द्रमा की पूजा करे।

इसके बाद साधक वेदी पर षट्कोण, उसके बाहर वृत्त और वृत्त के बाहर अष्टदलकमल और उसके बाद चार द्वार-वाला भूपुर बनावे। वह इस यन्त्र पर मूलमन्त्र से देवता को पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। फिर 'ॐ' वीज से होम-द्रव्यों का प्रोक्षण

---

१ इष्ट-देवता का नाम लेकर 'स्थण्डिलाय नमः' कहे।

करे। फिर वह उक्त यन्त्र के अष्टदलकमल के वीज-कोष में 'ह्रीं आधारशक्त्यादिभ्यो नमः—से पूजा करे।* फिर वह यन्त्र के आग्नेय-कोण में—ॐ धर्माय नमः—से, ईशान-कोण में—ॐ ज्ञानाय नमः—से, वायव्य-कोण में—ॐ वैराग्याय नमः—से, और नैऋत्य-कोण में—ॐ ऐश्वर्याय नमः—से पूजा करे। फिर वह पूर्व में ॐ अधर्माय नमः—से, उत्तर में ॐ अज्ञानाय नमः—से, पश्चिम में ॐ अवैराग्याय नमः—से और दक्षिण में ॐ अनैश्वर्याय नमः—से पूजा करे।

इसके बाद साधक यंत्र के मध्य में पूजा करे। यथा—

ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, रं वह्निमण्डलाय दश कलात्मने नमः, फिर वह उक्त कमल के केशरों में पूजा करे। पूर्व की ओर से प्रारम्भ करे। यथा—ॐ पीतायै नमः, ॐ श्वेतायै नमः, ॐ अरुणायै नमः, ॐ कृष्णायै नमः.

* साधक चाहे इसी एक मंत्र से पीठ की पूजा करे। चाहे प्रत्येक का नाम लेकर अलग अलग पूजा करे। यथा–१ ॐ आधारशक्तये नमः २ ॐ प्रकृत्यै नमः, ३ ॐ कूर्माय नमः, ४ ॐ अनन्ताय नमः, ५ ॐ अमृतसागराय नमः, ६ ॐ मणिद्वीपाय नमः, ७ ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः, ८ ॐ श्मशानाय नमः, ९ ॐ पारिजाताय नमः, १० ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ११ ॐ रत्नवेदिकायै नमः, १२ ॐ रत्नसिंहासनाय नमः, १३ ॐ मणिपीठाय नमः।

ॐ धूम्रायै नमः, ॐ तीव्रायै नमः, ॐ स्फुलिङ्ग्यै नमः, ॐ रुचिरायै नमः। मध्य में ॐ ज्वालिन्यै नमः से पूजा करे।

साधक यत्र पर 'रं वह्नेः आसनाय नमः'—से पूजा करे और सरस्वती देवी का ध्यान करे। यथा—

वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनाम।
वागीश्वरेण संयुक्तां ध्यात्वा मंत्री तदासने॥ १

फिर वह उन दोनों की 'ह्री' वीज से गन्ध-पुष्प से पूजा करे।

इसके बाद साधक अग्नि का दिव्य दृष्टि से अवलोकन कर मूल-मन्त्र पढ़ता हुआ 'फट्' मंत्र से अग्नि का आवाहन करे। फिर उक्त यंत्र में अग्नि के स्थान की 'ॐ वह्नेः योगपीठाय नमः'—से पूजा करे। फिर पूर्व से आरम्भ कर चारों कोनों मे ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, ॐ रौद्रायै नमः, ॐ अम्बिकायै नमः से पूजा करे। फिर वह यंत्र में अग्नि-स्थान मे 'अमुक देवतायाः (अपने इष्ट देवता का नाम ले) स्थण्डिलाय नमः'--से पूजा करे। इसके बाद इस स्थान मे इष्ट-देवता के रूप में वागीश्वरी का पूर्ववत् ध्यान करे।

अब साधक 'रं' वीज पढ़कर आग को जलावे। और 'मूल-मन्त्र हूं फट् क्रव्यादेभ्यः' से जलती हुई आग का एक भाग

१—अर्थात् नीले कमल के समान आँखोंवाली वागीश्वर-द्वारा आलिङ्गित ऋतुस्नाता वागीश्वरी का उस स्थान में साधक ध्यान करे।

दक्षिण-दिशा में राक्षसों के लिए गिरा दे। फिर वह 'फट्' मन्त्र पढ़कर दिव्य दृष्टि से अग्नि को देखे और 'हुँ' बीज से अवगुण्ठन-मुद्रा के द्वारा उसका अवगुण्ठन करे। धेनुमुद्रा दिखाकर अग्नि को अमृतमय करे। कुछ अग्नि एक पात्र में रख और उसे अंजलि में ले स्थण्डिल के ऊपर तीन बार चक्राकार घुमाये। तब साधक दोनों घुटने जमीन पर टेककर उस अग्नि का शिववीर्य के रूप में ध्यान कर यन्त्र में अपने सामने के त्रिकोण में उसे स्थापित कर दे। अब वह अग्नि की मूर्ति की—ह्रीं वह्निमूर्तये नमः—से पूजा करे और 'रं वह्निचैतन्याय नमः'—से वह्नि के चैतन्यरूप की पूजा करे। फिर वह—ॐ चितपिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञा ज्ञापय स्वाहा'—इस मंत्र से यन्त्रस्थ अग्नि को जलावे। इसके बाद मन्त्र से उसकी प्रार्थना करे। यथा—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्॥[२]

इसके बाद साधक स्थण्डिल को कुश से ढँक दे और कहे—

१ अर्थात् हे अग्नि की सर्वज्ञ पीली चित् शक्ति, तू मार डाल, मार डाल, जला दे, जला दे, पका दे, पका दे, आज्ञा कर।

२ अर्थात् मैं प्रज्वलित वेदकर्ता हुताशन अमल सुवर्ण-वर्ण सर्वतोमुखी अग्नि की वन्दना करता हूँ।

'अग्नि त्वं अमुकी असि'।[1] अमुकी के स्थान में अपने इष्ट-देवता के नाम से अग्नि का सम्बोधन करे। तदनंतर—ॐ वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा[2]—इस मंत्र से अपने इष्ट-देवता के नामवाली अग्नि की पूजा करे। फिर—ॐ वह्नेर्हिरण्यादि सप्तजिह्वाभ्यो नमः—इस मंत्र से हिरण्य आदि अग्नि की सातों जिह्वाओं की पूजा करे।

इसके बाद साधक अग्नि के षडङ्गों की पूजा करे। यथा—ॐ सहस्रार्च्चिषे हृदयाय नमः—इस मंत्र से अग्नि के हृदय की पूजा करे। इसके बाद—वह्नेःषडङ्गेभ्यो नमः—इस मंत्र से उसके षडङ्गों की पूजा करे।[3] फिर—ॐ वह्निमूर्तिभ्यो नमः—इस मंत्र से वह्निमूर्ति की पूजा करे। तदनन्तर—ॐ ब्रह्मादिभ्योऽष्टशक्तिभ्यो नमः—इस मंत्र से ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों की पूजा करे, ॐ पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः—इस मंत्र से पद्म आदि आठ निधियों की पूजा करे। फिर इन्द्रादि दिक्पालों की

१—अर्थात् हे अग्नि, तुम अमुक देवता हो।

२ अर्थात् हे वैश्वानर, वेदकर्ता, यहाँ आओ, आओ, हे रक्ताक्ष, सब कार्यों को सिद्ध करो।

३ साधक चाहे तो शेष अंगों की अलग अलग पूजा करे। यथा—ॐ स्वस्ति पूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुँ, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्।

और वज्रादि आयुधों की भूपुर में यथास्थान पूजा करे।

इसके बाद साधक एक बालिश्त कुश के दो दर्भ लेकर उन्हें घृत पर बेड़े बेड़े रख दे। तब वह घी के बायें इडा का और दाहनी ओर पिंगला का ध्यान करे। वह बीच में सुषुम्ना का ध्यान करे। तब दाहनी ओर से घी लेकर--ॐ अग्नये स्वाहा--से अग्नि की दाहनी आँख को अर्पित करे। फिर बायीं ओर से घी लेकर ॐ सोमाय स्वाहा--से अग्नि की बायीं आँख को अर्पित करे। फिर बीच से लेकर--ॐ अग्निसोमाभ्यां स्वाहा--से अग्नि के सिर को अर्पित करे। फिर 'नमः' कहकर दाहनी ओर से घी लेकर--ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा[१]--से अग्नि के मुख में घृत को अर्पित करे। फिर भूः, भुवः, स्वः--इन तीन व्याहृतियों से अग्नि में घृत छोड़े।

इसके बाद--ॐ वैश्वानर जातवेद इहावहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा--इस मंत्र से तीन बार आहुतियाँ दे।

इसके बाद साधक अग्नि में इष्ट-देवता का आवाहन-मंत्र-द्वारा आवाहन करे और पीठों के सहित उसकी पूजा करे।[२] इसके बाद वह--'मूलमंत्र स्वाहा'--से उसे पच्चीस आहुतियाँ

---

१ अग्नि का एक रूप।

२ इष्टदेवता का आवाहन-मंत्र, पीठ-पूजा और इष्ट-देवता की पूजा-विधि पूर्वार्द्ध में यथा स्थान मिलेगी। वही सब यहाँ करे। साधक गंध-पुष्प से पूजा करे।

दे। फिर अपनी आत्मा को अग्नि-देवता तथा इष्ट-देवता से ध्यान-द्वारा ऐक्य में लाकर वह मूलमंत्र में 'अङ्गदेवताभ्यः स्वाहा'—से अंग-देवताओं के लिए ग्यारह आहुतियाँ दे।

अब साधक अपनी कामना के अनुसार संकल्प पढ़े। यथा—विष्णुः ॐ तत्सत ॐ अद्य अमुकमासस्य अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकराशिस्थिते भास्करे अमुकअभीष्टार्थसिद्धि-कामः अमुकगोत्रः श्रीमत अमुकशर्मा तिलाज्यादिमिश्रितैः पुष्पैर्विल्वपत्रादिभिर्वा सार्द्धं वह्नौ आहुतिं अहं ददे।* यह संकल्प पढ़ कर तिल, घी-शहद अथवा पुष्प अथवा बिल्वपत्र अथवा दूसरी उपयुक्त वस्तुओं में मिश्रित द्रव्य से यथाशक्ति आहुतियाँ दे। आठ से कम आहुतियाँ न दे। इसके बाद वह फल और ताम्बूल लेकर—मूल मंत्र स्वाहा—से अग्नि में पूर्णाहुति करे। फिर संहार-मुद्रा दिखाकर अग्नि का विसर्जन कर उसे अपने हृदयकमल में स्थापित करे। वह इस समय—अग्ने क्षमस्व—यह मन्त्र पढ़े। और बचे हुए घी में भस्म मिला कर अपनी भौंहों के बीच में लगावे। इस प्रकार हवन समाप्त करे।

(महानिर्वाण तन्त्र छठा उल्लास)

* अर्थात् अमुक महीने, पक्ष और तिथि आदि में देवता की प्रीति अथवा अमुक उद्देश के लिए मैं अमुक शर्मा या वर्मा आदि अग्नि में तिल आदि की आहुतियाँ छोड़ता हूँ।

८ पात्र-वन्दना*

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं शाम्भवम् ॥
वीरद्व्यष्ट चतुष्टषष्टिनवकं वीरावली पञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनि मन्त्रराशिसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

अर्थ—श्रीनाथादि तीनों गुरु, गणेश, तीनों पीठें, भैरव, सिद्धौध, तीनों वटुक, दूती क्रम, शाम्भव, वीरावली, पञ्चम और मंत्रराशि के सहित गुरुमण्डल की मैं वन्दना करता हूँ ।

(१)

श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चान्द्रामृतं प्लावितम् ।
क्षेत्राधीश्वरयोगिनीगणमहासिद्धैः समाराधितम् ॥
आनन्दार्णवकं महात्मकमिदं साक्षातत्रिखण्डामृतम् ।
वन्दे श्रीप्रथमं कराम्बुजमिदं पात्रं विशुद्धिप्रदम् ॥
ॐ आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा ।

अर्थ—श्रीमान भैरव के मस्तक में सुशोभित चन्द्रमा के अमृत से आप्लावित, क्षेत्रपाल, योगिनीगण, महासिद्धों के द्वारा सुसेवित, आनन्दरूपी समुद्र, महात्म्य मे संयुक्त, साक्षात्

---

* चक्रार्चन के बाद पान-क्रिया के समय इस वन्दना का उपयोग किया जाता है ।

त्रिखण्ड मुद्रा का अमृत, करकमलागत इस विशुद्ध करनेवाले पात्र की मै वन्दना करता हूँ।

(२)

हैमं मीनरसावहं दयितया दत्तं च पेयादिभिः।
किंचिच्चंचलरक्तपङ्कजदृशा तस्यै समावेदितम ॥
वामे स्वादु विशुद्धि शुद्धिकरणं पाणौ निधायात्मकम।
वंदे पात्रमहं द्वितीयमधुनानन्दैकसंवर्द्धनम ॥
ॐ विद्यातत्त्व शोधयामि स्वाहा।

अर्थ—रक्त कमल के समान कुछ कुछ चञ्चल नेत्रोंवाली शक्ति के द्वारा दिये हुए, स्वर्णवर्ण वाले, मीन के रस से पूर्ण, पेय आदि से शक्ति का दिया हुआ, आनन्द का बढ़ानेवाला जो यह दूसरा पात्र है, बायें हाथ में विशेष शोधन करनेवाला शुद्धिखण्ड लेकर मैं इसकी वन्दना करता हूँ।

(३)

सर्वाम्नायकलाकलापकलितं कौतूहलद्योतकम।
चन्द्रोपेन्द्रमहेन्द्रशम्भुवरुणब्रह्मादिभिः सेवितम ॥
ध्यातं देवगणैः परं मुनिगणैः मोक्षार्थिभिः सर्वदा।
वन्दे पात्रमहं तृतीयमधुना स्वात्मावबोधक्षमः ॥
ॐ शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा।

षडाम्नाय की कलाओं में वर्णित, कौतूहल का द्योतक; चन्द्रमा विष्णु,* महेन्द्र, शिव, वरुण और ब्रह्मा आदि देवताओं से